विदेसिया

रंग आन्दोलन का प्रगतिशील त्रैमासिक

भिखारी ठाकुर विशेषांक - १

सम्पादक
अश्विनी कुमार 'पंकज'

उपसम्पादक
सुरेन्द्र तिवारी

व्यवस्थापक
रंगश्री

प्रबन्ध
सामान्य : मिथिलेश कुमार शर्मा
प्रसार : जितेन्द्र कुमार सिंह

विशेष सहयोग
निर्मल कुमार
अरूण कुमार पाण्डेय

सम्पर्क
रंगश्री
B / III 580
धुर्वा, राँची-834004

मुद्रक
सुकृत प्रेस
भुताहा तालाब, कचहरी रोड
राँची-834001

मूल्य
एक अंक : तीन रुपये
वार्षिक : बारह रुपये

विदेशिया

भिखारी ठाकुर विशेषांक–१

प्रस्तुति

क्रम		पृष्ठ
१	भरतमुनि की परम्परा में भिखारी ठाकुर जगदीश चन्द्र माथुर	६
२	भिखारी ठाकुर से साक्षात्कार प्रो० रामसुहाग सिंह	११
३	भिखारी ठाकुर के संग-तीन लोक रंग तैयब हुसैन पीड़ित	१५
४	महान लोक गायक : भिखारी ठाकुर नारायण भक्त	१८
५	अथ सूत्रधार उवाच गजेन्द्र नारायण सिंह	२३
६	संस्था : भिखारी ठाकुर आश्रम	३०

अगले अंक में

महेश्वराचार्य, डा० बालेन्दु शेखर तिवारी, उमा पति पाण्डेय, डा० चन्द्रेश्वर कर्ण, अंकुश्री, उमिल थपलियाल, डॉ० सिद्धेश्वर सिंह, प्रभृति विद्वानों के सारगर्भित लेख और अन्य स्थायी स्तम्भ।

छपते-छपते

हिन्दी के शीर्षस्थ नाटककार तथा उपन्यासकार डा० लक्ष्मी नारायण लाल, (६०) के आकस्मिक निधन से हिन्दी साहित्य को अपूरणीय क्षति हुई। विदेशिया - परिवार उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

प्रवेशांक : दिसम्बर १९८७

–सूत्रधार

महेश्वराचार्य जी ने अपनी पुस्तक 'भिखारी' में लिखा है, यह सही है कि तुलसी के 'मानस' ने जनमानस पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त किया है, लेकिन आज यदि उत्तरी भारत के अधिकांश लोगों के हृदय पर हाथ रखकर पूछा जाय कि ऐसा कौन-सा जनकवि अथवा लोक कलाकार था, जो एक साथ ही हँसने-रुलाने की क्षमता रखता था, तो उसका एक मात्र यही सही उत्तर हो सकता है कि नृत्य-संगीत तथा काव्य-कला विशारद-भिखारी !'

आज से लगभग छः दशक पहले, बिहार के रंग-आंदोलन को एक नई जमीन देने वाले रंगकर्मी भिखारी ठाकुर अपनी सभी रचनाओं में सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक विसंगतियों से जूझने के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। उनके नाटकों में जन-कल्याण की भावना निहित है। वे जन-कवि हैं। लोकभाषा के अप्रतिम गायक। भाषा में सहजता, सरलता, तरलता तथा मधुरता है। लोकमंच के माध्यम से उन्होंने जो भी प्रस्तुत किया वह मात्र मनोरंजन नहीं था, एक मिशन था ! इसीलिए महा-पंडित राहुल सांकृत्यायन ने कहा है, 'भिखारी ठाकुर हमनी के एगो अन-गढ़ हीरा हवें ।'

यह बड़े हो खेद का विषय है कि बिहार आज तक उन्हें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान सम्मान नहीं दे पाया है। जन्म-शताब्दी वर्ष पर भी बिहार सरकार का सांस्कृतिक विभाग, अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन तथा भोजपुरी अकादमी खामोश है और राज्य भर के रंगकर्मियों, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों तथा नाट्य-संस्थाओं ने अपनी-अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ लिया है।

बहरहाल, रंग-आंदोलन को एक नई दिशा व दशा देने के लिए कृत-संकल्प 'विदेसिया' का यह प्रवेशांक आप के हाथों तक पहुँचा है। अगर हम अपनी इस कोशिश में थोड़ा भी सफल हो पाते हैं तो निश्चित रूप से उसका श्रेय आपके भरपूर प्यार स्नेह, आशीर्वाद और सहयोग को जायेगा।

भरतमुनि की परम्परा में भिखारी ठाकुर

जगदीशचन्द्र माथुर

अनेक व्यक्तियों को बड़े लोगों के हस्ताक्षर जमा करने का शौक बचपन से ही लग जाता है और कुछ तो नेताओं, अभिनेताओं, कवियों, खेल के विजेताओं इत्यादि को अपनी दस्तखत-बही की पकड़ में ला कर ऐसे ही आह्लाद का अनुभव करते हैं जैसे बाज अपने शिकार को पंजे में पकड़ लेने पर। इसी लिए अंग्रेजी में इस शौक को 'आटोग्राफ हंटिंग' कहा जाता है।

यह शौक मुझ पर कभी हावी नहीं हो पाया। पर एक बार—केवल एक बार - मैं ने एक व्यक्ति से आटोग्राफ मांगा। वह व्यक्ति थे—भिखारी ठाकुर।

उस दिन समाचार पत्र में तीन पंक्तियों का समाचार पढ़ा कि बिहार के ग्राम-गायक और भोजपुरी लोकरंगमंच के सुविख्यात कलावन्त भिखारी ठाकुर का ८६ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया।

और मैंने १७ बरस से संजो कर रखी हुई, अनघड़ पोथी निकाली। पुस्तक का नाम—'भिखारीकृत पुस्तिकासमूह'। मोटे अक्षरों में छपी हुई, अनघड़ मेट-अप और सज्जा, सस्ती जिल्द, इस ग्रन्थ को तो शायद नगरों के पुस्तकालयों में जगह भी न मिले। पुस्तक मुझे भेंट करते हुए उन्होंने बिहार की कैथीलिपि में लिखा—'पढ़े. देखे वास्ते हम साहब के किताब देत बानी। भिखारी ठाकुर।' यही वह मेरा एकमात्र आटोग्राफ है।

उसी पोथी में एक फटे हुए-से कागज पर कैथी-लिपि ही में भिखारी ठाकुर का छोटा-सा पत्र। कोई खास बात नहीं है उस पत्र में पर उस का उद्धरण प्रासंगिक होगा—'॥ रामजी ॥' श्री बाबू जगदीश चन्द्र माथुर साहब चरणकमल में प्रणाम.....हम अपना.....साथ ता० २५-१-५४ के आइब..... अपने के चपरासी अइसन मुसकिल.....भइल। हन आपना खरच से आइब। ता० २६-१-५४ के रहब। द: भिखारी ठाकुर मोकाम कुवुपुर पो० कोट-कपट्टी सामपुर। छपरा, हाल मोकाम नोखा। पो० नोखा। जिला आरा आइब (छूटे हुए स्थानों के शब्द कागज के फट जाने के कारण अज्ञात है। जाहिर है कि भिखारी ठाकुर को कभी किसी अफसर के पास जाने से किसी चपरासी ने रोका होगा। इसी लिए मुझ से व्यवस्था के लिए उन्होंने अनुरोध किया था। खर्च की बात इस लिए कि भिखारी ठाकुर की मण्डली यदि कहीं बाहर जाती थी तो चिट्ठी लिख कर यात्रा-भत्ता पहले मंगा लिया जाता था।)

कैथीलिपि! टूटे-फूटे अक्षर जैसे कोई नौ-सिखिया जैसे-तैसे कर के लिखावट कर रहा हो। भिखारी ठाकुर से जब मैं ने उन के हस्ताक्षर की मांग की थी तब उन्होंने मुझ से साफ कहा—'हम को लिखना कहाँ आता है? बस थोड़ी बहुत दस्तखती कर लेते हैं।' मैं ने कहा—'बस, वही चाहिए।'

क्यों मैं इच्छुक था भिखारी ठाकुर के आटोग्राफ के लिए? मैं बिहार का शिक्षा-सचिव था। अनेक उच्च कोटि के कलाकारों और साहित्यकारों से मेरी जान पहचान थी और कुछ से बन्धुत्व का नाता। बिहार में कई शिक्षा एवं सांस्कृतिक संस्थाओं का तेजी के साथ आयोजन कर रहा था। हस्ताक्षरित पुस्तिका और सन्देशों का तो मैं खजाना जमा कर सकता था। फिर भी केवल एक 'अर्द्धशिक्षित' ठेठ ग्रामीण गायक से मैंने उस के दस्तखत की भीख मांगी। क्यों?

इस लिए कि भिखारी ठाकुर की मौजूदगी में मैं ने महसूस किया कि मैं तो महज एक सरकारी अधिकारी हूँ, जिसके मन में मैं कला-मर्मज्ञता के इक्के-दुक्के वे बीज हैं, जिन्हें 'सहृदयता' कहा जाता है।

लेकिन वह दो-ढाई हजार पहले के नाट्य-प्रयोक्ता भरत मुनि की परम्परा में रंगमंच का अनूठा अधिनायक है। मुझे याद आता है 'भरत नाट्य शास्त्र' का वह श्लोक जिसमें इन्द्र कहते हैं कि देवता लोग अभिनय-कला में अक्षम्य हैं। रंगशाला के सुधी कलाकार तो केवल मुनिजन ही हो सकते हैं।

अशक्ता भगवन् देवा श्चयोग्या नाट्यकर्मणि।
या हमें वेदगुह्यज्ञा ऋषय: संशितव्रता:।।

हम लोग छोटे-मोटे इन्द्र भले ही इतरा लें अपनी रसविदग्धता और नाट्य-विवेक पर। लेकिन सक्रिय ज्ञानी तो वही हैं जिन्होंने भरत मुनि की विरासत पाई है, जिन की प्रतिभा रंगशाला की चौहद्दी को घेरती है यानी कथानक, लोकहित, अभिनय (यानि वार्ता-गान-नृत्य का सामंजस्य) तथा प्रदर्शन (सज्जा-पोशाक इत्यादि)। ऐसे ही सर्वतोन्मुखी प्रतिभावन प्रयोक्ता थे भिखारी। भरत मुनि के मानस-वंशज थे भिखारी ठाकुर।

मैं अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ। जिस २६ जनवरी, १९५४ ई० की चर्चा ऊपर उद्धृत पत्र में की गई है उस रात को मैंने भिखारी ठाकुर का विराट रूप देखा जिस में विद्रूप भी शामिल था। पटना के हार्डिंग पार्क के पीछे आम्रकानन, जिसमें तृतीय बिहार सांस्कृतिक समारोह के सिलसिले में लोक-मंडलियों द्वारा प्रस्तुत गान, नृत्य और नाट्य का आयोजन था, उस समय टिकट खरीद कर आये हुए दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। १२ या १५ हजार दर्शक उपस्थित थे। हजारीबाग के घटवार नृतक, राँची के उराँव, खरसंगा के छउ नृतक, वैशाली का मछुआ मण्डल—अनेक मण्डलियों ने प्रदर्शन किए उत्कृष्ट और उल्लासपूर्ण। और तब भिखारी ठाकुर ने अपनी सुविख्यात भोजपुरी 'विदेसिया' शैली में 'बेटी-वियोग' नाटक के अंश जब प्रस्तुत किये तब आगे की दो-चार पंक्तियों में बैठे 'सम्भ्रान्त' समाज को छोड़कर समूचा दर्शक-समूह तन्मय हो गया। मंच और दर्शक-समाज के बीच तालमेल या 'कम्युनिकेशन' मैंने बहुत कम देखा है। लेकिन उस मस्ती के कारण हमलोग जो उत्सव के आयोजक थे कुछ चिन्तित हो चले। विशाल जन-समूह रंगमंच पर उमड़ा आ रहा था। पुलिस तक को बुलाना पड़ा। लेकिन देखा कि पुलिस अपने डण्डे से जो थोड़ा बहुत कंट्रोल कर पाती उससे कहीं प्रखर अस्त्र भिखारी ठाकुर के पास था। परिस्थिति बिगड़ती देखी तो झट से कथानक के प्रसंग को बदल कर भिखारी ठाकुर (उनकी वय उस समय लगभग ६५ की होगी) उतर पड़े उत्तान शृंगार रस के समरांगण में। श्लील, अश्लील का भेद भी गायब हो गया।

उसके दो या तीन बरस बाद पटना के आल इंडिया रेडियो ने उद्यान में मंच प्रदर्शन का आयोजन किया, जहाँ भिखारी ठाकुर को दूसरे रूप में देखा। नाटक का नाम याद नहीं। लेकिन भिखारी उतरे एक तिलकधारी उपदेशक की भूमिका में। नीति और मनोरंजन का अनुपम सामंजस्य। लेकिन किसी प्रकार की नागरिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं। उस से भी अधिक प्रभावोत्पादक 'रामनाम' में तन्मय हो कर कीर्तन का प्रसंग। वह वृद्ध नट मानो जीवन को तटस्थ होकर क्षितिज का आह्वान समझ कर अदृष्ट पारलौकिक संकेतों पर नाच रहा था, गा रहा था।

कलाकार के इन दो रूपों के अलावा तीसरा रूप मैं ने अपने दफ्तर में तब देखा, जब वह मुझ से मुलाकात के लिए आए थे और जिसका जिक्र ऊपर उद्धृत पत्र में है। ठेठ देहाती छटा, कोई बनावट नहीं, विनम्रता में स्वार्थ का संकेत नहीं, आत्म-विश्वास ऐसा जिसे दिखावे की दरकार नहीं। यह हार्डिंग पार्क से पहले की बात है। उस कलाकार ने मुझे आभास भी नहीं होने दिया कि इंगित पर हावड़ा से लेकर गोरखपुर वाराणसी तक हजारों की भीड़ झूम उठती है। और यह भी नहीं कि अंग्रेजी सरकार में उनके लोकप्रिय नाटकों के प्रदर्शनों का

अपने प्रचार के लिए मंच के रूप में इस्तेमाल करने का प्रयास किया था और सन्. १९४०-४१ ही में उन्हें 'राय साहब' की उपाधि भी दी गई थी। मुझ से तो उनकी बातचीत देहाती रंगमंच की प्रेरणाओं के स्रोत के बारे में, समस्याओं के बारे में और उसे प्रोत्साहन देने की सम्भावनाओं के विषय में हुई। उस समय तक मैं देहाती रंगमंच को मात्र देहाती रंगमंच ही समझता था। उसकी परम्परागत शालीनता, धूलिधूसरित परतों में छिपी उसकी कलात्मकता और मार्मिकता, एव नैतिक आदर्शों में उस की आस्था.....इन विशेषताओं से मैं परिचित नहीं था।

शुरू से ही दर्शकों श्रोताओं की नब्ज पहचानने लगे। नाच और गीतों के बीच-बीच में क्या हो ताकि श्रोताओं का मन लगा रहे ? कभी शायद श्रोता समाज पर उपदेशकों का प्रभाव देखा था। उपदेशक साक्षात व्यास-से दीख पड़ते। सोचा 'क्यों न मैं भी भोजपुरी बोली में गीत, छन्द, दोहा, चौपाई इत्यादि के बीच में उपदेश दूं जो समाज की समझ में आ जाए ?' इसी तरह 'वार्तिक' की परम्परा चल निकली। एक नमूना देखिए जो सीता जी द्वारा अहिवात की महिमा-सम्बन्धी चौपाई के बाद 'विधवा विलाप' नाटक में उन्होने दिया है—

तन धन धाम धरनिपुर राजू
पतिविहीन सब शोक समाजू

चार चीज जोगावे के चाहीं, इज्जत, एकवाल अकीद, एहवात।

एहवात चीज खेत में ना मिले, दुआर पर मकान में भी ना मिले।

झाँपी में बन्द रहेला। झाँपी खोलला पर ना मिले। सिन्होरा में रहेला। लेकिन सिन्होरा खोलला पर भी ना मिले।

कागज के पुड़िया में सेन्दुर रहेला। अब मकान के भीतर झांप।

रहेला, झाँपी के भीतर पउती वो पउती में सिन्होरा वही सेन्दुर एहवात ह।

वोही एहवात वास्ते अपना पिता के पैर पर गिर के पुत्री विलाप करिहन।

'वार्तिक' भिखारी ठाकुर की नाट्य-विद्या से सम्वाद का निराला रूप बन गया, जिसे उन्हों ने अन्य लोकप्रिय शैलियों के आधार पर निखारा। भांड़ों की शैली में 'गदौबों की सवखीनी (शौकीनी) पर यह वार्ता देखिए –

'करम फूटल दुखिया के जिनह भइलन सवखीन। काम-धन्धा रूचते नइखे सवख से सवलीन। बावरी माथ में, घड़ी हाथ में, रण्डी साथ में, नथइब नाथ में, घर में माई उपास। जोरू भइली निरास, करत बाड़ कबिलास, परी गर्दन में फांस, दिल में घेरी तरास।'

जनानी फैसन नीमन-नीमन चीज खाके भइलीं लाह लोट। छव आंगुरी के ताई चढ़ल तबहुँ झूला छोट पेन्हके चलली उतान। केहुनी ऊपर से प्रमान, आधी पेटले ठेकान झूमक झूले दोनों कान। मन में बहुत बा गुमान, 'भिखारी' कइलन बखान देख के बानी हैरान। काम में बहुत अलसान, देखी झगड़ा में सान, नीके सुनी देखे कान। कहल माने ना बादान, आँख में सुरमा के बान। इहे चलल बा चलान : ताक भहुंआ के तान, आन केहु से मुस्कान, कइली पती के अपमान, सास से गीधवा मिसान। मुँह में जोड़ा खीली पान। धइली बाटे ओगलदान कात नीमन ह खनदान।..... सोना चान्दी देह में भरल बीता भर के झूला। छव गज के साड़ी पहिलली तबहुं गतर खुला। आधा पेट बा उघाट, लउकल ढोंढ़ी सुधार, मानो भरल बा भण्डार, भइल कुल के उधार।'

भिखारी ठाकुर के नाट्यशिल्प में 'वार्तिक' वाहन बने नीति के सन्देशों के, सामाजिक व्यग्य के प्रहारों के। लेकिन उस शिल्प का मूलाधार था लोकधुनों और तर्जों तथा प्रचलित पदों और छंदों का अक्षय भण्डार जिसकी कुंजी भिखारी ठाकुर

के हाथ आई। एक तो बालपन से ही भोजपुरी क्षेत्र की लोकप्रिय लयों—बिरहा, लोरिकायन, कुवर-विजयी, आल्हा, सोरठी, पूर्वी, कजरी में भिखारी ठाकुर ऐसे ही घुलमिल गए जैसे पानी में मछली। दूसरे रामचरितमानस के दोहे-चौपाई-छन्दों की लयों में उनका भावुक मन ऐसा रमा कि अपने प्रत्येक नाटक में भिखारी मानो, तुलसीदास के आगे पग-पग पर अपना भिक्षा-पात्र बढ़ा देते हैं। चौपाई, दोहों को गीतात्मक और नाट्यसहज रूप देने में भिखारी ने अपूर्व कौशल दिखाया है। तीसरे बंगाल के नगरों में बंगाली जात्रा और संकीर्तनों की छाप भी उन पर पड़ी और कीर्तन की शैली में रचे पदों को भी यत्र-तत्र पिरो कर उन्होंने अपनी रचनाओं को बहुरंगी पहरावा दिया।

मण्डली का काम चल निकला और सट्टे दूर-दूर से आने लगे। तब तक भिखारी ठाकुर में इतना आत्मविश्वास हो चला कि अपनी ईजाद इस नाट्य-विधा का संस्कार किया और सुघटित रूप दे सकें। एक साहसपूर्ण निश्चय किया कि विषय-वस्तु न धार्मिक होगी, न राजाओं और लोककथाओं में विश्रुत नायक-नायिकाओं की रूमानी प्रेम-कथाओं की। परम्परा से दामन छुड़ा कर भिखारी ठाकुर ने अपने चारों ओर फैले भोजपुरी समाज के दुख-सुख के प्रसंगों के आधार पर प्लाट रचा। भोजपुरी किसान-हरवाहे वे, जो गांवों में रहते और वे, जो हावड़ा कलकत्ता जाकर दरबान-गिरि और मजदूरी करते—वही तो भिखारी ठाकुर के खेल-तमाशे के संरक्षक थे। और उनके मर्म को छूने वाली कथा गढ़ने में उन्हें शायद कोई कठिनाई नहीं हुई। हर वर्ष सैकड़ों भोजपुरी (छपरा, आरा, मोतीहारी, गोरखपुर, बलिया, आजमगढ़ इत्यादि) जिलों से बंगाल में कमाई करने निकल जाते। अपनी युवती पत्नियों को घर छोड़ जाते। कलकत्ता-हावड़ा में अक्सर वेश्याओं के फेर में पड़ जाते। पत्नी बेचारी कलपती रहती। सन्देसे भेजती। पर बरस गुजर जाते और वियोग चलता रहता। लौटते भी जरूर पर अकसर पुनर्मिलन अल्पकालिक होता। साधी-सादी कथा, जिस के रस में भोजपुरी समाज सहज ही सराबोर हो गया।

पहला नाटक 'बिदेसिया' अब मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। लेकिन उसी के आधार पर बाद में उन्होंने 'बहरा बहार' लिखा। बिहारी ठाकुर ने इस नाटक के पूर्वरंग में जो स्थापना की उससे जान पड़ता है कि उन्हें विश्वास था कि वे एक नई विधा का सृजन कर रहे थे, जिसमें भोजपुरी जीवन के उल्लिखित प्रसंग, एवं भोजपुरी लोकगीतों की शैलियों के साथ तुलसीदास और सन्त सम्प्रदायों के आध्यात्म का जानबूझ कर समावेश किया गया। वार्तिक पहले तो नाटक के चारों पात्रों के नाम बताता है—विदेशी (ग्रामीण जो अपनी पत्नी को छोड़ कर बाहर जाता है) प्यारी सुन्दरी (उसकी पत्नी, जो उसके वियोग में कलपती है), रखेलिन (वेश्या जिसे विदेशी ने शहर में रखेलिन बना कर रखा है) और बटोही (जो प्यारी सुन्दरी का सन्देशा लेकर शहर जाता है और विदेशी की आँखें खोलने की चेष्टा करता है) समाजी (यानी गायकवृन्द). 'साँच बरोबर तप नहीं' का दोहा गाते हैं। उसके बाद वार्तिक कथा के तत्व—'एलिगरी' को इन शब्दों में स्पष्ट करता है—

'वार्तिक—विदेशी सत, प्यारी सुन्दरी-जीव, रखेलिन-झूठ, बटोही उपदेश। आत्मा से परमात्मा काहे कुरोख हो गइलन। देना का झंझट से चाहे विरोध का झंझट से। स्त्री के पति छोड़ के परदेश चल जालन, तइ से झूठ झंझट से आत्मा आत्मा से परमात्मा कुरोख हो जालन। बीच में कारण रखेलिन रूपी झंझट से छुड़ावे मिलाप करा देवे खातिर बटोही उपदेश, अथवा प्यारी सुन्दरी जीव, विदेशी ब्रह्म, रखेलिन काया, बटोही धाक। जइसे वा।

समाजी—उभय बीच सिय सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बीच माया जैसी॥

वार्तिक—यह चारों के सम्वाद होना चाही। कइसन? प्यारी सुन्दरी के राधिकाजी लेखा, विदेशी

के श्री कृष्णचन्द्र जी लेखा, रखेलिन के कुबरी लेखा, बटोही के ऊधोजी लेखा।

इस भाव को पातिव्रत धर्म के आदर्श से जोड़ कर व्याख्या करने के बाद, वार्तिक नाटक में व्यवहृत गान शैलियों की बारीकी का इस भाँति उल्लेख करता है—

वार्तिक—हम निपढ़ हंई। हमरा भूल चूके, सरकार सभनी माफ करत रहब। तिरहुत चाहे लमहरा के लोग जानेला जे ननदी भौजी, बिदेशिया वो बिरहा सभ एके चीज ह। से बात न ह। बिरहा दूसरी चीज ह, ननदी-भौजी दूसर चीज ह, बिदेशी के दूसर चीज ह। ई सभ तमाम फरक ह।'

नाटक का कथानक न तो जटिल है और न किसी प्रकार की आकस्मिक घटनाओं से भरपूर। पहले बिदेशी (पति) और प्यारी का सम्वाद, जिसमें विदेशी अपने परदेश जाने की घोषणा करता है और प्यारी मनुहार करती है। सम्वाद दोहों और गीतों मे है जब हाथ झटक कर, कुरता, धोती, टोपी लेकर बिदेशिया पूरब की ओर प्रयाण करता है, तो पूर्वी बिदेसिया तेवड़ा, निर्गुन, झूमर इत्यादि धुनों मे एक के बाद एक गीत गाती है उसकी बिरहिणी घोषणा करती है—

'बिरह के बूपवा में जोगिनी के रूपवा में, तोहरे के अलख जगइयों बलमूआं।'

कभी भगवान से प्रार्थना करती है, कभी अपने जिउ (मन) को पंछी की भाँति अपने प्यारे के पास उड़ जाने को कहती है—'उड़ि के तू चलिजा जिउ पिउ का उदेशवा में, अहो मोरे रामा-मोर मनवा पिउ का रंग में रंगाल हो राम।'

उस समय एक बटोही आता है। तब तो मानो प्यारी के मन का बाँध ही टूट जाता है सहानुभूति के संस्पर्श से। बटोही को अपने प्रियतम की पहचान बताते-बताते (करिया ना गोर बाटे, लम्बा नाहीं हउअन नाटे, मझिला जवान श्यामसुन्दर बटोहिया), बार-बार अपनी मनोव्यथा, अपने आँसुओं का जिक्र छेड़ देती है—'कइसे के कहीं हम, नइखे धरात दम सरिसो फुलात बाटे आंख में बटोहिया।'

बटोही पूरब के नगर में जाता है और खोजते-खोजते वहाँ पहुँचता है जहां बिदेशी अपनी रखैल सलोनी के साथ चौपड़ खेल रहा है। पहले तो बटोहिया उस निर्मोही की भर्त्सना करता है और फिर याद दिलाता है कि कैसी सुन्दर-साँवरे वर्ण वाली उस की प्यारी धनियाँ है—

'तोहरा मेहरिया के कटि हो केहरिया के, देख कर होइहि बान हो बिदेशिया। अथवा के बरवा भंवरवा समान बाटे, मुहवा दीपकवा बरतबा बिदेशिया।

बात बिदेशिया के लग जाती है और वह अधीर हो कर थोड़ी देर के लिए मूछित हो जाता हैं। उस की रखैल उसे आँचल झल कर होश में लाती है। उसके बाद वाला सम्वाद यथार्थ के स्तर पर भोजपुरी बोली से खड़ी बोली पर उतर आता है—

रण्डी—मन में कष्ट भयो कह काहे। तन कछु पीर कि घर का दाहे?

बिदेशी—तन में पीर कछुक नहिं, लागी घर की आह। प्यारी का दुख समुझ के होत कलेजे दाह।

रण्डी—प्यारी कौन?
बिदेशी—घर वाली।
रण्डी—हम हुई घर वाली।
बिदेशी—हाँ-हाँ तुम भी हो।
रण्डी—हम हैं कि वह?
बिदेशी—दोनों।
रण्डी—क्या आप यहाँ रहना चाहते हैं कि घर जाना?
बिदेशी—घर जाना चाहते हैं।

(शेष पृष्ठ २८ पर)

भोजपुरी भाषा के सर्वश्रेष्ठ नाटककार और शीर्षस्थ कवि श्री भिखारी ठाकुर से साक्षात्कार

प्रो० रामसुहाग सिंह, भूतपूर्व अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग, संत जेवियर महाविद्यालय, राँची

१ जनवरी, १९६५ ई० के १ बजे पूर्वाह्न में लोक कलाकार भिखारी ठाकुर की ७७ वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर धापा (कलकत्ता के पूर्वी सीमान्त) में श्री सत्यनारायण के भवन-परिसर में भव्य अभिनन्दन के लिए समारोह का आयोजन हुआ। अभिनन्दन के समापन के उपरान्त *साक्षात्कार का क्रम सरल भाषा में, स्वाभाविक वार्तालाप के रूप में प्रारम्भ हुआ।

रामसुहाग सिंह : भिखारी ठाकुर जी आपकी जन्म-तिथि क्या है ?

भिखारी ठाकुर : सिंह साहब, १२९५ साल पौष मास शुक्ल पक्ष, पंचमी, सोमवार, बारह बजे दिन।

आपका जन्म स्थान कहां है ?

कुतुबपुर दियर, कोढवा पट्टी रामपुर (सारण)।

आपके पिताजी का क्या नाम है ?

दलसिंगार ठाकुर।

आपके दादा जी का क्या नाम है ?

गुमान ठाकुर।

क्या आपके पिताजी पढ़े-लिखे थे ?

वे.....अशिक्षित थे।

आपकी शिक्षा किस श्रेणी तक हुई ?

स्कूल में केवल ककहरा तक, मैंने एक वर्ष तक पढ़ा पर कुछ नहीं आया। भगवान नामक लड़के ने मुझे पढ़ाया।

आपके पिताजी की आर्थिक स्थिति कैसी थी ?

जमीन तथा अन्य सम्पत्ति बहुत ही कम थी, गरीबी थी।

आपके जमीन्दार कौन थे ?

मेरे जमीन्दार आरा के शिवसाह कलवार थे।

आपके साथ उनका व्यवहार कैसा था ?

उनका व्यवहार अच्छा था।

क्या लड़कपन से ही नाच-गान की ओर आपकी अभिरूचि है ?

मैं तीस वर्ष तक हजामत करता रहा, निमंत्रण देता रहा।

कैसे नाच गान और कविता की ओर आपकी अभिरूचि हुई ?

मैं कुछ गाना जानता था। नेकनाम टोला के एक हजाम रामसेवक ठाकुर ने मेरा एक गाना सुनकर कहा कि बहुत शुद्ध है। उन्होंने यह बताया कि मात्रा की गणना इस प्रकार होती है। बाबू हरिनन्दन सिंह ने मुझे सर्वप्रथम 'रामगीत' का पाठ पढ़ाया। वे अपने गाँव के थे।

आपके गुरूजी का क्या नाम था ?

स्कूल के गुरुजी का नाम याद नहीं है।

आपने अपना पेशा कब से कब तक किया ?

तीस वर्ष की उम्र तक।

क्या अपने पेशे के समय भी आप नाच-गान का काम करते थे ?

तीस वर्ष के बाद से नाच-गान का काम कभी नहीं रुका।

सबसे पहले आपने कौन कविता बनाई ?

बिरहा-बहार पुस्तक।

सबसे पहले आपने कौन नाटक बनाया ?

बिरहा-बहार ही नाटक के रूप में खेला गया।

सबसे पहले बिरहा-बहार नाटक कहां खेला गया ?

मुजफ्फरपुर जिला के सबैमस्तपुर ग्राम में लग्न के समय में बिरहा-बहार नाटक सर्वप्रथम खेला गया। मैं जोड़ी बजाने गया था, पर अच्छी तरह बजा नहीं

सका, कुछ गाया भी नहीं।

क्या आपके पहले भी इस तरह का नाटक होता था ?

मैंने 'विदेशिया' नाम सुना था, 'परदेशी की बात' † आदि के आधार पर मैंने 'बिरहा-बहार' बनाया।

इस तरह के नाम की प्रेरणा आपको कहां से मिली ?

कोई पुस्तक मिली थी, पर याद नहीं है।

क्या आप छन्द शास्त्र के नियमों के अनुसार कविता बनाते हैं ?

मैं मात्रा आदि नहीं जानता हूँ, 'रामायण' की चौपाई के ढग पर कविता बनाता हूँ।

आपकी लिखी हुई कौन-कौन पुस्तकें हैं ?

बिरहा बहार, विदेशिया, कलियुग-बहार, हरिकीर्तन, बहरा बहार, गंगा स्नान, भाई-विरोधी, बेटी-वियोग, नाई-बहार, श्री नाम-रत्न, राम-नाम माला आदि।

सबसे हाल की रचना कौन है ?

नर नव अवतार।

आपकी अधिकांश पुस्तकें कहाँ-कहाँ से प्रकाशित हैं ?

पुस्तकों से मालूम होगा।

आपके विचार में आपकी सबसे अच्छी रचना कौन है ?

भिखारी हरि-कीर्तन और भिखारी शंकासमाधान।

आप जब कोई पुस्तक लिखते हैं तो क्या किसी दूसरे से भी दिखाते हैं ?

मानकी साह (गाँव के ही हैं) वे अभी जीवित हैं। वे सिर्फ साफ-साफ लिख देते हैं। उन्हें शुद्ध-अशुद्ध का ज्ञान नहीं है। रामायण का सत्संग स्वर्गीय बाबू, रामानन्द सिंह के द्वारा हुआ। श्लोक का ज्ञान दयालचक के साधु गोसाईं बाबा से हुआ।

रायबहादुर की उपाधि आपको कब मिली ?

राय बहादुर आदि की जो मुझे उपाधियाँ मिलीं उन्हें मैं नहीं जानता हूँ। कब क्या उपाधियाँ मिलीं मुझे कुछ मालूम नहीं है।

क्या आपको यह आशा है कि आपका कोई उत्तराधिकारी होगा ?

मेरे भतीजा गौरी शंकर ठाकुर (शिक्षा लोअर कक्षा तक) मेरी रचनाओं के आधार पर काम करते हैं।

आपकी सन्तानें कितनी हैं ? आपके लड़के क्या करते हैं ?

एक लड़का है, शिलानाथ ठाकुर, वह घर-गृहस्थी का काम करता है। उसे नाच आदि से कोई सम्बन्ध नहीं है।

क्या आप विश्रामपूर्ण जीवन बिताना चाहते हैं ?

मैं इस काम से अलग रहकर जीवित नहीं रह सकता हूँ। अर्थ का कारण गौण है।

आप तो जनता के कवि हैं, इसीलिए स्वतंत्रता के पहले और बाद में आप क्या अन्तर पाते हैं ?

मैं कुछ कहना नहीं चाहता।

वर्त्तमान शासन से क्या आप खुश हैं ?

उत्तर देना सम्भव नहीं है।

अभी तक आपको कितने पुरस्कार, पदक आदि मिले हैं ?

याद नहीं है।

हाल में आपको क्या कोई उपाधि मिली है ?

हाँ, बिहार-रत्न की।

बिहार के बाहर आप अपना नाच दिखाने कहाँ-कहाँ गये हैं ?

आसाम, बनारस, कलकत्ता और बम्बई - सिनेमा में एक गीत देने के लिये।

कैसे आप समझते हैं कि आपके नाच से लोग प्रसन्न हैं ?

कोई उत्तर नहीं।

क्या आप पूजा-पाठ, संध्या वन्दना भी करते हैं ? किन देवताओं की पूजा करते हैं ?

सिर्फ राम-नाम जपता हूँ।

जिन्दगी को आप सुखमय या दुःखमय समझते हैं ? हिन्दी छोड़कर और कोई भाषा जानते हैं ?

मौन।

इस समय आपके नाच के ढंग पर और कौन-कौन नाच हैं ?
अनेक नाच इसी आधार पर हो गये हैं।

क्या कुछ दिनों तक सिनेमा में भी आप थे ? सिनेमा का जीवन आपको कैसा मालूम हुआ ?
नहीं।

आप आपने दल के लोगों का क्या खुद अभ्यास कराते हैं ?
उस्ताद से सिखवाते हैं।

आप जो नाटक दिखाते हैं उसका लक्ष्य धनोपार्जन के अतिरिक्त और क्या समझते हैं ?
उपदेश और धनोपार्जन।

स्वास्थ्य कैसा रहता है ?
अभी तक केवल दो-तीन दाँत टूटे हैं।

नाटक के बाद की थकावट कैसे दूर होती है ?
मौन।

क्या आप राजनीति में भाग लेना चाहते हैं ?
निरुत्तर।

पुनः आपका जन्म इसी देश में हो तो क्या आप यही कार्य चाहते हैं ?
कोई निश्चित नहीं।

कविता करने या नाटक लिखने के लिये आपको क्या तैयारी करनी पड़ती है ?
पहले तैयारी करनी पड़ती थी, पर अब नहीं।

अपने नाटकों के कथानक आप कहाँ से लेते हैं ?
समाज से।

इस समय आपके अनन्य मित्र कौन-कौन हैं ?
अब कोई नहीं है, बाबू रानानन्द सिंह थे।

क्या आपकी कोई स्थायी नाट्यशाला है ?
कोई स्थायी जगह नहीं है।

अच्छे नाटक या अच्छी कविता के आप क्या लक्षण समझते हैं ?
जनता की भीड़ से।

रामायण या और कोई उच्च कोटि के ग्रंथ जब आप पढ़ते हैं तब अपने ही अर्थ समझ लेते हैं या किसी से सहायता लेते हैं ?
कभी-कभी किसी से पूछ लेते हैं।

क्या आपको मालूम है कि इस समय आपका उच्च कोटि के कलाकारों में स्थान है ?
जो मुझे प्राप्त हुआ है वही मेरे लिये पर्याप्त है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद से सबसे पहले और अन्त में कब भेंट हुई ?
मुझे याद नहीं।

क्या वर्त्तमान राष्ट्रपति (डा० राधाकृष्णन) से और वर्त्तमान प्रधान मन्त्री (श्री लाल बहादुर शास्त्री) से कभी आपकी भेंट हुई है ?
कभी नहीं।

पंडित जवाहर लाल जी ने कभी आपका नाटक देखा था ?
कभी नहीं देखा था।

गांधी जी ने आपका नाटक देखा था या उनसे कभी भेंट हुई थी ?
निकट से साक्षात्कार नहीं हुआ।

आपकी ससुराल कहाँ है ?
मेरा प्रथम विवाह मानपुरा (आरा) के स्वर्गीय देवशरण ठाकुर की लड़की से हुआ। उसके निधन के बाद दूसरा विवाह आमडाढ़ी (छपरा) में हुआ। उसके गंगालाभ के बाद तीसरा विवाह हुआ, उसकी भी मृत्यु .....।

आदरणीय भिखारी ठाकुर जी एवं भोजपुरी प्रेमियो,

ठाकुरजी के ऐसे प्रख्यात लोक कलाकार को पाकर हम अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। आपने हमें भारत के एक छोड़ से दूसरे छोड़ तक, बम्बई से गौहाटी पर्यन्त गौरवान्वित किया है। हमारा मस्तक ऊँचा किया है। भारत से बाहर मौरिशस, केन्या, ब्रिटिशगायना, सूरीनाम, मेडागास्कर, युगांडा, बर्मा, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रिका, फिजी, ट्रिनिडाड तथा न्यूगिनी आदि दूरस्थ देशों में दो करोड़ से अधिक भोजपुरी प्रवासी हैं। उनकी जिह्वा पर आपके द्वारा प्रणीत बिरह गीत "विदेशिया" की रघुवीर नारायण द्वारा विरचित राष्ट्रीय गीत 'बटोहिया' की, और

पँवरियों द्वारा रचित वीरगीत कुंवर सिंह के 'पँवारे' की पंक्तियाँ नर्तन करती रहती हैं।

आपने आंगिक प्रकंपनों और विविध प्रकार की भाव-भंगिमाओं से युक्त 'विदेशिया नाच' नामक एक नवीन शैली के 'लोकनृत्य' का प्रवर्तन किया है। पूर्वी-धुन, बिरहा, खेमटा, आदि लोक गीतों की रचना के द्वारा आपने सरल, धर्मभिरू एव सत्यनिष्ठ, आँचलिक जीवन का वर्णन किया है। स्वर-साधन, आरोह-अवरोह, लय-ताल, आलाप आदि से समन्वित रागों में आपकी सुमधुर कण्ठ-ध्वनि सुनकर श्रोता-वृन्द मन्त्र मुग्ध से होकर सिर संचालन करने लगते हैं। झाल-वादन के समय आप झाल की झंकार में एकाकार हो जाते हैं। विदूषक के रूप में आपकी विलक्षण ध्वनि, विचित्र वेश-भूषा, अनोखी मुख-मुद्रा, रहस्मयी दृष्टि तथा कपोतवत् गति देखकर दर्शकगण हास्यरस में विभोर हो कभी मधुर हास और कभी अट्ठहास करते हैं। सामाजिक सामग्री के आधार पर विदेशिया, बेटी वियोगी विधवा वियोग, भाई-विरोध आदि अनेक नाटकों का प्रणयन कर आपने भोजपुरी में नाटक के अभाव को पूर्ण करने का सफल प्रयास किया है।

आपने अपने समस्त नाटकों के किसी-न-किसी पात्र के रूप में अभिनय किया है। आपका अभिनय स्वाभाविक, जीवन्त, पात्रानुरूप और चित्ताकर्षक होता है। कदाचित् ही किसी भाषा में एक ही व्यक्ति ऐसा हुआ होगा जो नर्तक, गीतकार, गायक, वादक, विदूषक, नाटककार और अभिनेता के गुणों से विभूषित हो।

ठाकुरजी, आप शिक्षा और उपदेशपूर्ण प्रवचनों, पद्यों, श्लोकों और कथनों से गर्भित वक्तृताओं के द्वारा दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इन गुणों के कारण हम निःसंकोच भाव से आपको भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की श्रेणी में रख सकते है।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आपको भोजपुरी का शेक्सपीयर कहा है। नाट्य कला के मीमांसकों के विचार से राहुल जी का यह कथन सर्वथा समीचीन है। आप दोनों की नाट्य कृतियाँ और काव्य मानव जीवन की अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत हैं। आप दोनों में बिम्ब ग्राहिणी और सर्जनकारिणी अद्भूत कल्पना शक्ति है। मनोरंजन आह्लाद का सुखद समन्वय हैं; ईश्वरी आदेशों के प्रति आस्था, मान्यताओं, धार्मिक विश्वासों और सिद्धान्तों के लिये पूर्ण उदारता है। आप दोनों के नाटकों के पात्र मानवीय या अमानवीय कार्य करने के पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। दोनों को मनोवैज्ञानिक अवस्था का सूक्ष्म और गहरा परिज्ञान है। दोनों मानव प्रकृति के पारखी और जीवन की विविधताओं का द्रष्टा हैं। शेक्सपीयर के समान ही आप नाट्य रचना में कुशल हैं। आपका भी मुख्य उद्देश्य मनोरंजन और नैतिकता का उपदेश देना है। समीक्षकों की दृष्टि में शेक्सपीयर के 'मेकबेथ' 'ओथेलो' एवं 'किंगलीयर' क्रम से प्रथम द्वितीय और तृतीत नाटक है। आपके 'विदेशिया';'बेटी वियोग' और 'गिचोर बहार' नाट्यकला मर्मज्ञ की दृष्टि में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान के योग्य हैं। आप दोनों के नाटक मानव चरित्र पर आधारित और जीवन को प्रतिबिम्बत करने वाले और दिशानिर्देशक हैं।

बिम्बोत्कर्ष, शिल्प-विधान, अर्न्तदृष्टि, उदात्त कल्पना सत्यप्रदर्शन तथा भाषासौष्ठव की दृष्टि से आप दोनों की नाट्य कृतियाँ उत्कृष्ट सृष्टि हैं।

ठाकुर जी आपने जो हमें अपना बहुमूल्य समय दिया है और आत्मीयता प्रदर्शित की है, इसलिये हम आपके आभारी हैं। परम पिता परमेश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि आप शतायु हों जिससे भोजपुरी साहित्य उच्चतम शिखर तक पहुँच सके।

---

* यह साक्षात्कार–विवरण कागजों के पुलिन्दों में खो गया था। जो निरंतर खोज होती रही। संयोगवश कुछ महीने पूर्व यह विवरण प्राप्त हो गया। —लेखक

* सूरदास का यह पद बहुत प्रसिद्ध है, कहत कह पर-देशी की बात ? मन्दिर-अरध-अवधि बदि हमसों हरि-अहार चलि जात।

* यह साक्षात्कार आज से ढाई दशक पूर्व का है, जब हिन्दी में साक्षात्कार आज के समान एक स्वतंत्र कला के रुप में विकसित नहीं हुआ था। यह किसी वृहत आयोजन का एक सामान्य वार्तालाप या बातचीत समझा जाता था। पर सरल, स्पष्ट, अकृत्रिम और मनोरजक था, आजकल साक्षात्कार प्रायः वक्र, दृष्ट कूट सदृश, अभिनयात्मक और श्रमसाध्य होता है। —लेखक

भिखारी ठाकुर के संग : तीन लोक रंग

● तैयब हुसैन पीड़ित

बिहार विभिन्न भाषाओं का राज्य रहा है। भोजपुरी, मैथिली और मगही तो इस प्रदेश में जैसे त्रिवेणी-सी प्रवाहित हैं। हिन्दी के बाद भोजपुरी इनमें से सर्वाधिक व्यापक भाषा के रूप में रही हैं। इसका प्रचार-प्रसार न केवल देश बल्कि नेपाल, मारिशस, ट्रिनीडाड, ब्रिट्रीश गेयना, फिजी आदि विदेशों में भी है। इस भाषा से संबंधित विषयों पर शोध-कार्य की एक लम्बी शृंखला तो है ही, इसने कबीरदास, ग्रियर्सन, राजेन्द्र प्रसाद, राहुल सांकृत्यायन, शिवपूजन सहाय, महेन्द्र मिश्र, सच्चिदानंद सिन्हा, मनोरंजन प्रसाद और महेन्द्र शास्त्री जैसे लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है।

लोक कलाकार स्व० भिखारी ठाकुर इसी भाषा के आकर्षण थे जिन्होंने अपने जीवन-काल में एक विशाल जनसमुदाय में अपनी लोकप्रियता का पताका फहराया और अपनी विदेशिया नाट्य शैली के कारण दूर-दूर तक चर्चित रहे।

इन्हें राहुलजी ने भोजपुरी का शेक्सपियर कहा है और जगदीशचन्द्र माथुर ने इन्हें भरतमुनि की नाट्य परम्परा में माना है। यह इनके भीतर का कलाकार ही था जिसने १९४२ में अंग्रेजों से 'रायबहादुर' की उपाधि ली, १९५४ में बिहार के राज्यपाल श्री अनंत शयनम् अयंगार से ताम्र पत्र पाया और बम्बई के प्रोड्यूसरों को 'विदेशिया' फिल्म में सादर आमंत्रित करने को प्रेरित किया।

ठाकुरजी लगभग अठाइस पुस्तकों के प्रणेता हैं लेकिन इनकी सारी रचनाएँ फुटपाथी संस्करण के रूप में होने के कारण बुद्धिजीवी समाज में समादृत नहीं हो सकीं। हाँ, इस क्षेत्र में इन दिनों स्तुत्य प्रयास हो रहा है और वह दिन दूर नहीं जब तुलसी और प्रेमचन्द की तरह इनका भी मूल्यांकन होगा। भिखारी ने अपने विषय में कहा भी है –

" अबहीं नाम भइल बा थोरा।
जब ई छूट जाइ तन मोरा ॥

तेकरा बाद नाम हो जइहन।
पंडित कवि सज्जन जस गइहन।
नइखीं पाट पर पढ़ल भाई
गलती बहुत लउकते जाई ॥"

अस्तु हम अन्यत्र न भटककर भिखारी को अगर उनकी रचनाओं में परखें तो उनके तीन रूप हमारे हाथ मुख्य रूप से लगेंगे। एक–भक्त का, दो– समाज-सुधारक का, और तीन–रंगकर्मी और नाट्यकार का। हाँ, तीनों में उनका लोकरंग बराबर उपस्थित मिलेगा। यथा–

भक्त भिखारी

तुलसी राम भक्त थे, सूर कृष्ण भक्त और कबीर को निर्गुण ब्रह्म प्यारा था लेकिन भिखारी ने अपनी भक्ति संबंधी रचनाओं में लोक प्रचलित सारे देवी-देवताओं की खिचड़ी पकायी है। वास्तव में वह शक्ति का पुजारी है लेकिन शक्ति के

ये जो विभिन्न रूप गाँवों और कस्बों में व्याप्त है, उनका प्रतिनिधि होने के कारण भिखारी ने उनसे अपना दामन नहीं बचा पाया है।

इसलिए उसने शिव की वन्दना की है—
'हरदम बोलो शिव बम-बम-बम'

राम की उपासना की है—
'ए रघुवर चरन कमल बलिहारी।'

महाबीर को गुहराया है—
'महाबीर जी राखऽ लाज।
बिगड़ल सकल सँवारऽ काज।'

कृष्ण की स्तुति गायी है—
'मम हिय परवत कानन गाछी।
तेहि के मध्य चरावहु बाछी॥'

गंगा की पूजायी की है—
गंगा मइया जनम-जनम दीह दरस तरस
वारे गांझभोर हो।'

गणेश को आराधा है—
'श्री गणेश के चरन में नावत बानी सीस'

आदि शक्ति के आगे सर झुकाया है—
'मइया पटकत बानी माथ
आदि भवानी चरन में तोहरा।'

यहाँ तक कि गुरु और स्थानीय देवी-देवताओं से भी अपनी कला की सफलता के लिए हथ-जोड़ी की है जो हर पुस्तक के प्रारंभ में 'सुमिरन' के रूप में विद्यमान है।

कहना न होगा कि यह भिखारी के भक्त का लोक रूप है जिसमें इतनी उदारता है।

समाज- सुधारक भिखारी

भिखारी पढ़े-लिखे नहीं थे। भगवान नामक गुरु ने केवल उन्हें अक्षर-ज्ञान कराया था। फिर संगति से उन्होंने रामायण की चौपाइयाँ टो-टा के बाँची थीं और आज भी उनकी हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ 'कैथी' लिपि में देखने को मिलती हैं। अतः आज की विसंगतियों की गहराई तक पहुँचने में वे असमर्थ थे। उसी तरह उनका सतही समाधान ही वे दे सकते थे जो उन्होंने अपनी कृतियों में दिया है। तब भी अपने आस-पास के परिवेश से वे अनभिज्ञ नहीं थे। धर्म में बाह्य आडम्बर, रूढ़िवादिता, बेमेल विवाह, दहेज के कुफल, विधवा-विवाह, पारिवारिक वैमनस्य, नशा के दुष्परिणाम और बुढ़ापे की समस्यायें उन्होंने अपनी रचनाओं में उठायी हैं तथा अपने ढंग से उनका समाधान भी ढूढ़ा है।

भिखारी जाति के नाउ थे। पेशे से वह जाति घर-घर की बिल्ली समझी जाती है। फिर तब के सम्भ्रान्त कहे जानेवाले परिवार में और आर्थिक दृष्टि से डाँवाडोल परिवार में भी नारी की क्या स्थिति होती है, भिखारी ने उसे नजदीक से देखा था। इसलिए 'पियवा निसइल' में पियक्कड़ पति की पत्नी की फरियाद, 'बेटी-बेचवा' में बूढ़े पति की युवा नारी की करुणा और फिर 'गंगा-स्नान' तथा 'गवरघिचोंड़' में संतान के लिए विह्वला नारी का हृदय सजीव हो उठा है भिखारी के नाट्य गीतों में।

'विदेशिया' तो इसक्षेत्र का दस्तावेज है जो तत्कालीन समाज में पनप रहा आर्थिक अभाव का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता पेट की खातिर यहाँ के गभरू जवानों को पूरब देश (आसाम और कलकत्ता) जाने की विवशता की कहानी कहता है और परिणाम स्वरूप उधर बाजारू औरत की कुसंगति में पति का भेंड़ बन जाना इधर अकेली अबला पर समाज के बुरे लोगों की कुदृष्टि से एक ही सिक्के के दोनों पक्ष सामने ला रखता है।

जायसी के पद्मावत की तरह इस नाटक की एक व्याख्या सूफी अध्यात्म भी है।

रंगकर्मी भिखारी

रंगकर्मी भिखारी एक तरफ अगर सुमिरण (मंगलाचरण), सूत्रधारीय, लबार (विदूषक) आदि लेकर भरत मुनि की नाट्य परम्परा में है तो दूसरी तरफ जनता के बीच, जनता से मिलकर, जनता की कहानी कहने के कारण अद्यतन नाट्य शैली के समीप।

भरी महफिल के बीच थोड़ी-सी जगह उसका रंगमंच है। कलाकार लोगों के सामने ही बहुधा अपना परिधान बदल लेते हैं वा मेकअप की ताम-झाम पूरा कर लेते हैं और समय पर अपनी भूमिका करने को उठ खड़े होते हैं। लोगों को कोई भी अनमन्यस्कता नहीं होती।

दृश्य-विधान तो इतना सरल कि एक फटी चादर तानकर एक तरफ कोहबर घर का आभास कराया जाता है दूसरी तरफ खमाखम भीड़ और चहल-पहल से भरी दरवाजे लग रही बारात का।

कभी-कभी तो कान्धे पर पड़ा गमछा माथे पर लपेट कर सारंगी वादक अपना काम छोड़ उठ खड़ा होता है और जब सारंगी के डंडे से ही बंदूक चलाने का पोज करता है तब लोगों के सामने जंगल उपज आता है और जब उसी डंडे से हल चलाने का स्वांग भरता है तो दर्शक उसे किसान के रूप में देखने लगते हैं। तबतक नारी की भूमिका निभाता कलाकार उसकी जगह बैठ गया होता है और लोगों को कुछ भी अटपटा नहीं लगता।

आज का नाटक लोगों से कटा कोई तमाशा नहीं, जीवन का एक अंग है। अतः दर्शकों की सहभागिता इसमें अपेक्षित समझी जाने लगी है।

विदेशिया शैली का कलाकार अपनी भूमिका के दौरान लोगों से बातें भी करता चलता है और दर्शक भी जहाँ-तहाँ उसे टोकते रहते हैं।

हिन्दी विभाग,
जेड० ए० इस्लामिया कॉलेज
सीवान-८४१२२६ (बिहार),

जगन्नाथ नगर महाविद्यालय

(रांची विश्वविद्यालय की अंगीभूत इकाई)

धुर्वा, रांची – ८३४००४

डॉ० अनिरुद्ध मिश्रा
प्राचार्य

महान लोकनायक - भिखारी ठाकुर

● नारायण भक्त

ठीक कबीर की भांति ही बिहार की पावन भूमि पर एक गायक, लोकगायक का जन्म हुआ था, जिसने गीत, नाटक और लोकनृत्य के द्वारा बिहार का मस्तक ऊँचा किया। सच ही उसे महापंडित राहुल-सांस्कृत्यायन ने भोजपुरी का शेक्सपीयर कहा था। उस महान् व्यक्तित्व का नाम था- भिखारी ठाकुर।

इस महान् लोकगायक का जन्म पौष मास शुक्ल ५ गंगा, सरयू और सोन के संगमस्थल कुतुबपुर नामक गांव में हुआ था। पिता दलसिंगार ठाकुर और माता शिवकली देवी जैसी भगवद्भक्त प्रकृति की गोद में पल कर लोकगायक बड़े हुए थे। महात्मा कबीर की भांति आरम्भ में ये निरक्षर थे, किन्तु बाद में अक्षर ज्ञान प्राप्त कर किंचित स्वाध्याय किया। साधु संगति से उनकी प्रतिभा में निखार आया

प्रारंभ में वे अपने पैतृक पेशे (क्षौरकर्म) में लग गए थे, किन्तु बाद में जीविकोपार्जन के लिए उन्हें खड़गपुर (पश्चिमी बंगाल) जाना पड़ा। वहाँ से प्रतिदिन रामलीला देखते थे, जिससे इनकी सुप्त कलाकार जीवन की प्रेरणा जागृत हो उठी। भिखारी को भिखारी नहीं, राष्ट्ररत्न बनना था। भोजपुरी का गौरवस्तंभ बनना था। अतः ये खड़गपुर से अपने गांव वापस आ गये। गांव आकर एक नाटकमंडली की स्थापना की और गांव-गांव जाकर अपनी रामलीला से लोगों को मंत्रमुग्ध करने लगे। ज्यों-ज्यों समय बीता, इसमें सुधार आता गया और नाटकमंडली की रामलीला ने नाटकों और नृत्यों तथा गीतों का स्थान ले लिया, जिन्हें वे स्वयं रचते थे। उनकी अभिनयकला में इतना आकर्षण था कि इससे आकृष्ट होकर दूर-दूर के लोग इनका अभिनय देखने आने लगे। किसी जमाने में इनके नाटक देखनेवालों की इतनी बड़ी भीड़ एकत्र होती थी कि विदेशी शासन को भीड़ पर नियंत्रण पाने के लिए पुलिस दस्ते नियुक्त करने पड़ते थे। द्वितीय महासमर के समय भिखारी ठाकुर ने सरकारी प्रचार में इतना योगदान किया कि विदेशी सरकार ने इनको "राय बहादुर" के खिताब से सम्मानित किया। आरंभ में लोग इन्हें "नचनिया" कहते थे और बड़े-बड़े जमींदार तथा सामंत इन्हें आमंत्रित करते थे। कहा जाता है, उन दिनों यातायात के इतने साधन सुलभ नहीं रहने पर भी दस-दस बारह-बारह कोस के लोग इनका अभिनय देखने आया करते थे। आखिर इनके अभिनय में कौन-सा ऐसा जादू था, जिसके कारण इतनी दूर से लोग खिंच आया करते थे। वह जादू था—इनकी अभिनयकला, इनके स्वरचित गीत और लोकनाटक।

प्राचीन मान्यता है कि कवि जिस परिवेश में रहता है, उसका दर्पण वह समाज के समक्ष रखता है। उन दिनों समाज में अनेक कुरीतियां थीं। जमींदारी प्रथा जोरों पर थी। बेमेल विवाह का प्रचलन जोरों पर था। भाई-भाई आपस में लड़ा करते थे, विधवाएं आठ-आठ आंसू बहा रही थी। निम्नवर्गीय व्यक्ति आजीविका की खोज में अपनी नवविवाहिता को छोड़ दूर - बहुत दूर चले जाते थे और दोनों दिलों के जवां अरमान अधूरे-के-अधूरे रह जाते थे। इन तमाम भावनाओं को भिखारी ठाकुर ने नजदीक से देखा था, परखा था। तभी तो गंगा-

स्नान, बुढ़वाला का बयान, कलयुगी प्रेम, भाई-विरोध, बेटी वियोग, पुत्रवधू, विदेसिया जैसे नाटकों को लिख कर और उनका मंचन कर सबके दिलों को इन्होंने जीत लिया था। लोकनायक की ख्याति प्राप्त कर ली थी। सारे उत्तर भारत की जबान पर भिखारी ठाकुर नाम की अनुगूँज थी। तब भिखारी ठाकुर "नचनिया" नहीं रह गये थे, अपितु भोजपुरी के, भाषा और साहित्य के लोकनायक बन चुके थे।

चूँकि कबीर की भाँति भिखारी ठाकुर को भी अनेक सामाजिक संघर्ष झेलने पड़े थे, अतः समाज के हर पक्ष की बुराइयों पर उन्होंने तीखा प्रहार किया। प्रहार ही नहीं किया, सुधार मार्ग का निर्देश भी किया। तत्कालीन समाज में बेटी बेचने की कुप्रथा थी। ऐसी हालत में कोई षोड्शी किसी साठ वर्ष के बूढ़े के हाथ बिक जाती थी। वह बूढ़ा उसे अपनी पत्नी बना लेता था और उसे सारी जिन्दगी रोने-बिसूरने के लिए छोड़ देता था। अपने "बेटी बेचवा" नाटक में भिखारी ठाकुर ने इसका बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है। इसमें नवविवाहिता बेटी के दर्द का जैसा एहसास होता है, शायद अन्यत्र देखने को न मिले। नाटक का पद देखिये–

सिकुरल जइते चाम, सूखल चुवल आम,
मुँहवा फटलका देवरवा हो बाबूजी।
धरी-धरी हांत धरी, कफ से भरल नरी,
नरक बिगत दिन बीती मोर बाबू जी।
रुपया गिनाई लिहल, पगहा धराई दिहल,
दादा लेखा खोजत दुलहवा हो बाबूजी।
रोअतनी सिर धुनि, एहि उछनल सुनि,
बेटी मति बेचे दीह केहू के हो बाबूजी।

भिखारी ठाकुर की यह कृति केवल भोजपुरी-भाषी लोगों के मर्म को ही नहीं छूती, बल्कि अन्य भाषियों के हृदय को भी झकझोर कर रख देती है। बूढ़े से युवती की शादी का जो परिणाम होता है सही हुआ भी। जब तक वह कली से खिलकर फूल बनती, बूढ़ा मुरझा जाता है और एक अबला को अनाथ छोड़ कर सदा के लिए पृथ्वी की गोद में सो जाता है। बेटी भागकर मैके में शरण लेती है और अपने पिता से कहती है---

अइसन देखल दुख, सपना ला.गेला सुख,
सोनवां में डलल सोहगवा हो बाबूजी।
अगुआ अभागा मुहलागा अगुआन होके,
पूड़ी खाके छुरी फेरि दिहल हो बाबूजी।

"बेटी बेचवा" नाटक में भिखारी ठाकुर ने जिस सामाजिक कुरीति को उजागर किया है, वह मर्म-स्पर्शी तो है ही, आनेवाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्रोत भी है।

भिखारी ठाकुर की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति "विदेसिया" है, जिसमें विरह विदग्धा विवाहिता ने अपने प्रियतम के पास एक बटोही के माध्यम से सन्देश भिजवाया है। यहाँ हमें कालिदास कृत "मेघदूत" की याद बरबस हो आती है। इस लोक-साहित्य को भिखारी ठाकुर ने लोकमंच पर उतार कर एक विरहिणी के अपार दुःख की ओर झांकने का संकेत किया है।

विरहिणी नायिका के मुँह से उसके विदेसिया पति का रूप-वर्णन साहित्य की दृष्टि से बड़ा ही उत्कृष्ट बन पाया है —

हमरा बलमुजी के बड़ी-बड़ी अंखियां से
चोखे चोखे बाड़े नैना कोर ए बटोहिया।
ओठवा त बाड़े जइसन कतरल पनवाँ से
नकिया सुगनवां के डोर रे बटोहिया।

अब विरहिणी नायिका अपने हृदय की पीड़ा का अपने-आप से इजहार करती है–

मचिया बइठल धनी मने-मने सोच तारी,
भुइयां लोटेला लामी केस रे विदेसिया।
गवना कराई सइयां घरे बइठवले से,

अपने गइले परदेस रे बिदेसिया ।
चढ़ली जवनियां बैरिन भइली हमरी से,
के ई मोरा हरिहें कलेस रे बिदेसिया ।
झमकि के चढ़वों में अपना अटरिया से,
चारों ओर चितवों चिहाय रे विदेसिया ।
कतहूँ ना देखो रामा सइयां के सुरतिया से,
जियरा गइले मुसकाय रे विदेसिया ।

इन पंक्तियों में एक कोमलकांत नारी की विरह-जन्य मनोदशा का चित्रण जिस सूक्ष्मता से किया गया है, यह भिखारी ठाकुर की उर्वर कल्पना शक्ति की विशेषता है। अपनी काव्याभिव्यंजना के लिए उन्होंने लोकगीतों की जिस रसपूर्ण परम्परा का अनुभावन

रागों, धुनों और लयों का जिस सूक्ष्मता से अवगाहन किया है, इससे उन्हें महान् लोकगायक कहने में किसी को कतई संकोच नहीं होगा ।

पहले कहा जा चुका है कि भिखारी ठाकुर ने अपने नाट्य-जीवन का आरंभ रामलीला से किया था। रामलीला का गायक स्वभावतः राम का भक्त होता है। लोकभाषा और लोकगीत के माध्यम से भिखारी ठाकुर भक्ति की अतल गहराई में डुबकी लगाते देखे जा सकते हैं। पुष्पवाटिका के प्रसंग में जनकपुर की महिलाओं के मुख से राम-लक्ष्मण के मोहक रूप का वर्णन कराते समय भिखारी ठाकुर का भक्तहृदय भाव विह्वलता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है ।

सांवर-सांवर गोर-गोर उमिर में बरोवर,
हाय रे जियरा
केहू नइखे लउकत मझोल
हाय रे जियरा
करत बाटे मन जे अकेले बतियइती,
हाय रे जियरा
कहत भिखारी परदा खोल,
हाय रे जियरा ।

राम के नेत्रों का वर्णन, वर-कन्या पक्ष का अद्भुद सम्मिलन मिथिला के लोकांचल में आज भी कंठहार बना हुआ है। सीता के द्वार पर राम की बारात जब पहुँचती है, वह पश्चिम की अनुपम झांकी मन को बरबस मोह लेती है ।

अवध से अइले चितचोरवा हे सखि चलु वर परिछे
बाल-वृद्ध युवती उठी धउरम,
करि-करि आपुस में सोरवा हे सखि,
साजि के सिंगार सब गहना पहिरल नीमन
लंहगा पटोर, हे सखि
दहि, अच्छत, गुर दउरा में धरि लेहु,
भरि लेहु सेनुर सिन्होरवा रथ पर
समधी सहित बरिअतिया

हाथी पर साधु सब माता लगवले,
सिर चनन कइल बखोरवा
धावत आवत बाजा बजावत,
नगर के कइल हड़होरवा, हे सखि

ये पंक्तियां उनके रामभक्त होने की साक्ष्य हैं। जिस ललित और सहज ढंग से राम-बारात का वर्णन किया गया है। यह अत्यन्त ही आकर्षक बन पड़ा है और मिथिलांचल की महिलाओं की जबान पर उसी तरह आज भी विद्यमान है ।

भिखारी ठाकुर केवल रामभक्त ही नहीं थे, अपितु कृष्ण की भक्ति में भी उनकी अगाध पैठ थी। कृष्ण लीला के संबंध में उन्होंने उसी भक्ति का परिचय दिया है ।

मइया जसोदाजी, कइसन बेहुरमत सखियन के
कान्हा तोर ।
पानी भरे जात जब हमनी के देखेल,
बइठेले बटिया अगोर ।
बान्हल केंस हमनी के अझुरावेले, धरेले अंचरा के कोर ।
कहत भिखारी बसे ना देतन,
तनिको भर रहितन जो गोर ।

'नचनिया' कहे जाने वाले भिखारी ठाकुर एक ही साथ रामभक्त, कृष्णभक्त, लोकगायक, नाटककार, नर्तक आदि सब कुछ थे। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को सुधारने का इन्होंने अनवरत् प्रयत्न किया था, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

लोकनर्तन में भिखारी ठाकुर को इतनी ख्याति मिली कि वे अपनी मंडली के साथ भारत की अन्य जगहों के अलावा बर्मा भी गये और अपनी धाक जमायी। उन्हें राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय अनेक पुरस्कार भी प्राप्त हुए। कुछ साल पहले 'विदेसिया' नामक भोजपुरी फिल्म बनी थी, उसमें भिखारी ठाकुर की भी एक भूमिका थी। छोटी-सी भूमिका रहते हुए भी भिखारी ठाकुर पूरी फिल्म पर छा गए थे। उनके जीवनकाल में कुछ लोग उन्हें 'भिखरिया' कहते थे। इस नाम के पीछे भी एक कारण था। वह कारण यह था कि एक वर्गविशेष से उनका आंतरिक विरोध था और विरोध का कारण यह था कि वे उस वर्गविशेष पर, अपने प्रदर्शनों द्वारा सीधा प्रहार करते थे। प्रशंसा की बात तो यह थी कि अपनी सस्ती लोकप्रियता का आकांक्षी वह शोषकवर्ग अपने पर हुए प्रहारों को हँसकर झेल लेता था। उन्होंने अपने काव्यनाटकों के माध्यम से अंधविश्वास, बेटी बेचवा, बेमेल विवाह, नशाखोरी, भाई विरोध आदि कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया था। उस समय भारत ब्रिटिश सम्राज्यवाद के अधीन था और उसके अधीन थे-सामंत, नौकरशाह और शोषकवर्ग। वे भला अपने पर हुए तीखे व्यंग्य-प्रहारों का बदला क्यों न लेते? जब और कुछ नहीं हुआ, तो भिखारी ठाकुर की गरिमा कम करने के विचार से उन्होंने 'भिखरिया' नाम दिया। मगर इससे कलाकार भिखारी का कुछ भी नहीं बिगड़ा। भला चिनगारी को पुआल से कब तक ढंका जा सकता है। शायद अपने समय में संत कबीर को भी ऐसा ही कुछ झेलना पड़ा होगा, क्योंकि कबीर ने भी वही किया था, जो बाद में चलकर भिखारी ठाकुर ने किया। निर्लज्ज शोषक रात के अंधेरे में तो शरमा कर छुईमुई हो जाते थे, किन्तु अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए इन्हें कई अभद्र नामों से संबोधित कर अपने अहम् की तुष्टि करते थे। वस्तुतः भिखारी ठाकुर ने अपने काव्य और अभिनय के माध्यम से भोजपुरी जनमानस को उसी तरह उद्वेलित कर दिया, जिस तरह तुलसीदास ने अपने काव्यों द्वारा अवध और हिन्दी प्रदेशों को उद्वेलित किया है। यहाँ आकर हम भिखारी ठाकुर की तुलना लोकनायक तुलसी से कर सकते हैं। हालाँकि इन्होंने रामचरितमानस- जैसे किसी वृहत काव्यग्रन्थ की रचना नहीं की है।

भिखारी ठाकुर की तुलना शेक्सपीयर से करते हुए डा० महेश कुमार सिन्हा ने लिखा है – शेक्सपीयर की कथावस्तु ऐतिहासिक है और कहीं-कहीं अमानवीय तत्वों से परिपूर्ण है, जबकि भिखारी ठाकुर की विषय-वस्तु सम-सामयिक सामाजिक जीवन की प्रतिक्रियाओं से बने कच्चे माल पर आधारित है जिन समस्याओं की चर्चा मिलती है, वे हैं–न्याय, सामाजिक बुराइयाँ, नीति, मर्यादा तथा उपदेश, ननद और भौजाई के बीच की समस्याएँ। गंगा में बाढ़, द्रौपदी पुकार, उपालंभ, राम विवाह और कृष्ण-लीला, राम नाम की महिमा तथा भक्ति संबंधी विषय। डा० सिन्हा के इस कथन में सचाई है, साफगोई है। वस्तुतः भिखारी ठाकुर ने भोजपुरी क्षेत्र को अपने नाटकों एवं गीतों में उतार दिया है। यही कारण है कि राम की बारात भोजपुर की बारात मालूम पड़ती है और सीता के यहाँ बारातगमन जनकपुर का बारातगमन लगता है।

सचमुच, भिखारी ठाकुर उत्तरी भारत की उस प्रभावशाली साहित्यिक कड़ी के छोर पर है, जहाँ गोरख, कबीर, सूर, तुलसी के ज्ञान, भक्ति, उपदेश, लीलागान और चरित बखान करने वाले दोहे चौपाई और पद का भण्डार भरा है। इसके अतिरिक्त वे भारतेन्दु की श्रेणी में रखने योग्य हैं। आंचलिक समस्या का कोई ऐसा पहलू नहीं है, जो उनसे अछूता रहा हो। लोक की समस्याओं को उजागर करने

वाला ही तो लोकनायक बन सकता है।

यह संतोष की बात है कि उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के नाम पर एक संस्था स्थापित है—लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम। यह आश्रम उनकी सम्पूर्ण कृतियों को तीन खण्डों में विभक्त कर प्रकाशित करने वाला है, जिसमें दो खण्डों का प्रकाशन हो चुका है।

मेरी मान्यता है कि कबीर की तरह भिखारी ठाकुर भी एक उज्जवल नक्षत्र थे, जो लोककथा कहते-कहते, लोक व्यथा-सुनाते-सुनाते, लोक संस्कृति बखानते-बखानते, लोक मर्यादा निभाते-निभाते, विरोधियों और पाखण्डियों से संघर्ष करते हुए एक दिन किसी अज्ञात क्षितिज में विलीन हो गये।

गली हरि मन्दिर,
पटना सिटी (बिहार)
पिन – ८००००८

श्रद्धांजलि

प्रसाद तथा प्रेमी के समसामयिक हिन्दी साहित्य के वयोवृद्ध नाटककार प० लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का निधन गत १६ अगस्त को हो गया। मिश्र जी 'अशोक' (१६२७), 'सन्यासी' (१६२६), 'मुक्ति का रहस्य', 'राक्षस का मंदिर' (१६३२), 'सिन्दूर की होली' 'आधी रात' 'राजयोग' (१६३४) आदि कई नाटकों के प्रणेता हैं, प्रसाद से सर्वथा भिन्न मार्ग पर चलकर उन्होने हिन्दी-नाटक-साहित्य को नया मोड़ दिया। उनके 'सन्यासी' नाटक के साथ हिन्दी–नाटक के विषय और शिल्प दोनों में बदलाव आया। अपने सभी नाटकों में उन्होंने सामाजिक समस्याओं को विशेषकर नारी समस्याओं को आधार बनाया है। अपने नाटकों की विषयवस्तु के लिए उन्होंने इतिहास के पृष्ठों में नहीं, समाज के विस्तृत आंगन में झांका और समसामयिक समाज में विशेष रूप से नारी की स्थिति और उसकी समस्याओं को अपने दृष्टिकोण से चित्रित किया। उन्होंने प्रेम, विवाह और शिक्षण सबंधी समस्याओं के समाधान के लिए बुद्धिवादी दृष्टिकोण का आग्रह रखा। प्रसाद के नाटकों में जहाँ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का प्राधान्य था वहाँ मिश्र जी के नाटकों में बौद्धिकता का समावेश हुआ। हिन्दी-नाटक को नई दिशा देने वालों में प्रसाद के बाद मिश्र जी का प्रमुख स्थान है।

हम विदेसिया-परिवार की ओर से उनको हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

AJANTA ELECTRICALS

Engineers, Manufacturers, Government Contractors &
General order Suppliers.

Branch : KENDUWA BRIDGE
P. O. Kusunda, Dhanbad (Bihar)

Head Off. : 6/2 R/ IA, UMA KANTO SEN LANE
Calcutta—700030.

अथ सूत्रधार उवाच

● गजेन्द्र नारायण सिंह

वर्ष १९८७ 'विदेसिया' के प्रणेता स्वनामधन्य भिखारी ठाकुर की जन्म-शताब्दी का है । भिखारी ठाकुर के संदर्भ में नाट्यकला से संबंधित हमारे राज्य में उसके इतिहास तथा विकास पर प्रकाश नहीं डालकर वर्तमान में रंगकर्म से जुड़े लोगों विशेषकर दावेदार रंगकर्मियों के विषय में बातें करना चाहूंगा । मेरे विचार से सभी कलाओं में नाटक साधारण से प्रबुद्ध सभी तबकों के लोगों में चेतना, जागृति तथा मानवोचित मूल्यों को उजागर करने का सबसे कारगर तथा सशक्त माध्यम है । नाट्यकला का महत्व, उसकी उपादेयता तथा उसके विकास और संवर्धन से जुड़े निष्ठावान समर्पित कहलानेवाले लोगों की भूमिका पर मैं प्रकाश डालना चाहूंगा । मेरी दृष्टि में सभी कलाओं का चोली-दामन का रिश्ता है और संगीत के एक अदना छात्र की हैसियत से मेरी प्रस्तुत विवेचना नाट्यकला तथा सम्बद्ध कलाओं के परिप्रेक्ष्य में कितनी सार्थक साबित होगी, इसका फैसला उन कला-महंथों पर छोड़ता हूँ जिन्हें इसके विशेषज्ञ होने का दावा है ।

मैं बहुत पहले नहीं जाना चाहता । भारतेन्दु के समय से अर्थात् आधुनिक हिन्दी के नाटकों की शुरुआत से प्रारंभ करता हूँ । भारतेन्दुकालीन और बाद के दिनों में (कोरेन्थियन थियेटर, पारसी थियेटर आदि-आदि) नाटक एक जरिया था जिससे सामाजिक कुरीतियों तथा प्रशासनिक जुल्मों-जोर के खिलाफ लोगों में जागरण पैदा किया जाता था या फिर ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं या आख्यानों की पृष्ठभूमि पर रचे नाटकों द्वारा समाज के समक्ष कोई उच्च आदर्श प्रस्तुत किया जाता था । रंगमंच पर मनोरंजक और उदात्तीकरण की दो विभिन्न प्रक्रियाओं को समाविष्ट किया जाता था । यही कारण था कि मंच और दर्शक समाज के बीच एक अद्भुत तालमेल और 'कम्यूनिकेशन' बना रहता था जिसका आज नितांत अभाव सा दिखता है । उन दिनों के मंचन की कलात्मकता जीवन के कठोर तथ्यों से पलायन नहीं करती थी । मुझे राज्य के बहुसारे रंगकर्मियों से यह शिकायत सुनने को मिलती रहती है कि उनकी नाट्य प्रस्तुतियों में उस जमीन—उस माटी-पानी की बू-बास तथा संस्कृति की झलक कम मिलती है जिसकी वर्तमान में नितांत आवश्यकता है । मैं इसकी पुष्टि के लिए दर्जनों उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूँ । पर यहाँ एक प्रेरक दृष्टान्त प्रस्तुत करता हूं— २६ जनवरी १९५४ को पटना हार्डिंग पार्क के पीछे आम्रकानन में तृतीय बिहार सांस्कृतिक समारोह के दौरान लोक-मंडलियों द्वारा संगीत-नृत्य और नाट्य के कार्यक्रम हुए थे । तब भिखारी ठाकुर ने अपनी सुविख्यात 'विदेसिया' शैली में 'बेटी-वियोग' नाटक के अंश प्रस्तुत किये थे । कोई पन्द्रह हजार दर्शक वहाँ उपस्थित मंत्रमुग्ध थे । आखिर वह कौन सा सम्मोहन था जो इतनी अपार जनराशि को अपने मोहपाश में घंटों बांधे रखा, इसकी गहराई में आज के रंगकर्मियों को जाना पड़ेगा । भिखारी ठाकुर ने जो प्रस्तुत किया उसे बिहार के ग्रामीण अंचलों से लेकर कलकत्ता और दिल्ली तक अनगिनत जन-समूह (साधारण तथा प्रबुद्ध दोनों) ने स्वीकारा । आज हम महानगरों में भारतीय रंगमंच और नाट्य समस्याओं की विवेचना करते हैं । पर सारी विवेचनाओं और तर्क-वितर्क से परे शायद उस 'पकड़' से दूर चले जाते हैं, जिसपर भिखारी ठाकुर सरीखे अर्द्ध शिक्षित नाट्य-प्रस्तोता ने एकाधिकार कर रखा था । क्या हमारे नागरिक संस्कार, प्रगतिशीलता तथा रचनात्मकता की ओट में कुछ और ही करने की प्रवंचना दर्शक-श्रोता जो कलाकार का 'इष्ट' होता है उनके मर्म को छूने में सहायक हो रहे हैं ?

इसपर वर्तमान रंगकर्म से जुड़े तमाम लोगों को ठण्डे दिल से विचारना होगा। भिखारी ठाकुर का जादू-उनका निरालापन, व्यक्ति तथा समाज के तमाम रहस्यों को उद्घाटित करने में तथा उनकी उद्बोधन पद्धति में था। भवभूति की भांति अपनी प्रतिभा और सीमाओं का एहसास रखते हुए उस ग्रामीण लोकनाट्य प्रयोक्ता और उन्नायक की सफलता का राज, उनमें छिपी तेजस्विता और विनय का विलक्षण सामंजस्य ही तो था। भिखारी ठाकुर की बहुमुखी प्रतिभा बेमिसाल थी-- नाटककार-सूत्रधार-अभिनेता-गीतकार-संगीतकार-मंच एवं रूपसज्जा विशेषज्ञ-नाट्यकला का कोई भी ऐसा अंगप्रत्यंग उनसे अछूता नहीं था जिसपर उनकी महारत न हो। मैं तो कहूंगा कि वे एक चलता-फिरता 'मिनी थियेटर' थे। अर्द्ध शिक्षित होते हुए भी उन्होंने अपने संस्कार नीतिमूलक तथा अध्यात्म प्रेरित रखे और यही उनकी सफलता की कुंजी थी। कारण अनन्तकाल से इस देश की कला- चाहे वह संगीत हो-चाहे चित्रकला-मूर्तिकला, इन सब की परम्परा आध्यात्मिकता से जुड़ी रही। जीवन के सारे क्रियाकलापों को हमारे ऋषि-महर्षियों ने धर्म और अध्यात्म से जोड़ रखा था-वर्तमान भौतिकवादी जनता की संस्कृति में शायद हम इसे स्वीकारने के लिए तैयार न हों पर कलायें जो कल तक जनमानस से जुड़ी रहीं-- उन्हें उत्प्रेरित करती रहीं--उनपर प्रभाव डालती रहीं, उनके मूल में प्रेरणा-स्रोत आध्यात्मिक पृष्ठभूमि ही रहीं। वही कवि, वही संगीतकार, वही चित्रकार-मूर्तिकार तथा नाटककार सबसे सफल रहा जिसने इस पृष्ठभूमि की गहराई में जाने और समझने की चेष्टा की-- जिसने जनमानस चाहे वह आम हो या प्रबुद्ध, उसे आलोड़ित, आनन्दित, रससिक्त कर दिलोदिमाग को कुछ खुराक पहुंचाने की अपने में विलक्षण क्षमता पैदा की। जब हम यह चर्चा करते हैं और इस बात की भर्त्सना करते हैं कि कलायें किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष की बपौती नहीं तो फिर उसके अनुरूप देते क्या हैं ? वह कैसा रहस्य था- कैसी साधना थी- कैसी उपलब्धि थी कि हजार-पांच सौ वर्षों के पश्चात् भी कालिदास, शूद्रक, तुलसी, तानसेन और ऐसे ही न जाने कितने के अवदानों की सार्थकता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है— इसे वर्तमान कला-साधकों को समझना होगा। इस संदर्भ में आज के छुटभुइये कला-साधक यह प्रश्न उठा सकते हैं कि उन्हें जो माहौल मिला वह हमें नहीं मिलता – आंशिक रूप से इसे हम मानने के लिए तैयार हैं – पर अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं है- प्रेमचंद को कौन सा माहौल मिला (उनके सुपुत्र अमृत राय जी को तो बना-बनाया बहुत कुछ मिला-- तो फिर वो प्रेमचन्द से ऊपर क्यों नहीं जा सके--जा सकते थे, परन्तु उन्होंने तो स्वनामधन्य पिताश्री से प्राप्त विरासत को भंजाने में ही अपनी चरम उपलब्धि समझी— आज अमृतरायजी जैसे साहित्यकार-कलाकार लखपति-करोड़पति हैं, पर उन्होंने जो साहित्य दिया है वह प्रेमचन्द की तुलना में जीवन-मूल्यों से कितना जुड़ा और उसकी सार्वभौम सार्थकता सिद्ध करने में कितना समर्थ और मूल्यवान है ?), शिवपूजन सहाय को कौन सा संरक्षण प्राप्त हुआ-- निराला-- विष्णु दिगम्बर पलुष्कर-- अलाउद्दीन खां-- रुक्मिणी देवी अरुंडेल और न जाने ऐसे कितने आधुनिक काल के कला-साहित्य क्षेत्र के कीर्ति-स्तंभों को कौन सा प्रोत्साहन कौन सी सुविधायें प्राप्त हुईं, बल्कि पग-पग पर हर तरह के व्यवधानों का सामना करना पड़ा—सोना तप कर ही खरा कुन्दन बनता है, क्या इसे झुठलाया जा सकता है। कला-साधना का पथ तलवार की धार हुआ करता है- कांटों की शय्या हुआ करती है- यंत्रणाओं-वेदनाओं की न समाप्त होनेवाली अखंड यात्रा हुआ करती है — कोई माने या न माने यह हकीकत और मेरे खुद का तजुर्बा है।

पर सच पूछिये तो कलाजीवी यदि वास्तव में वह कलाकार है तो विधाता की सुन्दरतम कृतियों में एक अनूठा प्राणी है। किसी ने आज के ख्यालियों में सिरमौर मल्लिकार्जुन मंसूर से कहा, "मंसूर साहब, गायन-विधा है तो मधुर, मगर बड़ा ही कष्टसाध्य और तकलीफदेह।" मल्लिकार्जुन जी ने छूटते ही

जवाब दिया—"तकलीफ, गाना भी कभी कष्टकर हो सकता है ? हम तो सृष्टिकर्त्ता के ऋणी हैं कि हमें उसने गायक (कलाकार) बनाया। हम तो सुरों की बस्ती के बाशिन्दा हैं, हमारे यहाँ तो आनन्द ही आनन्द है। हमारी कला के शब्दकोष में कष्ट नाम का शब्द होता ही नहीं, मात्र आनन्द होता है।" दुर्लभ और अतिकष्टसाध्य कला-विद्या को भी मल्लिकार्जुन मंसूर जैसे कलाकार जिस सहज भाव से कष्टकर मानने के लिए तैयार नहीं हैं--यह तो कला साधना की पराकाष्ठा है और तभी तो वह महान हैं---कला जगत के आदर्श हैं और आछोप (अप्रचलित) राग गाकर भी हमारे दिलोदिमाग में इक हूक पैदा करने में कामयाब रहते हैं। आनन्द-जगत के हम वासी हैं, इसका एहसास हर कलाकार को होना चाहिए तभी वह अपनी कला-प्रस्तुति द्वारा ऐसी बाबत पैदा कर सकता है जिसे सुन या देखकर श्रोता-दर्शक अभिभूत हो खिचा सा रह जाता है। कला के क्षेत्र में 'हर्रे लगे न फिटकरी' चरितार्थ नहीं हो सकता, सहज ही रंग चोखा हो ही नहीं सकता। कला सेवा में कोताही से काम नहीं चल सकता।-- इसमें कौशल प्राप्त करने का, निपुणता हासिल करने का कोई 'शार्ट कट, फार्मूला नहीं हो सकता। तभी तो मंसूर साहब सरीखे कलाकार राजनीतिक दांवपेंच-छलछद्मों से परे हैं और यही, कला के प्रति पूर्ण समर्पितता उनकी सफलता की कुंजी है। 'चट मंगनी पट ब्याह' आस्था और धैर्य का अभाव तथा तिजारती तहजीब कलाकारों तथा कला-विकास के लिए बेमानी है—जिन महान कला-साधकों ने कला को पेशे के रूप में अख्तियार किया उन्होंने भी अपनी कला को बाजारू नहीं होने दिया। हर कीमत पर बेचने के लिए तत्पर नहीं रहे—पेट की ज्वाला और साधना की तपस के बीच एक ऐसी 'लक्ष्मणरेखा' खींच रखी---एक ऐसा संतुलन रखा कि कला के मूल्यों की रक्षा के लिए कभी किसी भी कीमत पर समझौता नहीं किया और उस बिन्दु पर दुनियादारी को भी तिलांजलि देने से बाज नहीं आये।

अन्त में पुनः मूल प्रश्न पर आता हूं कि वर्तमान नाट्य-मंचनों या कोई भी कला प्रस्तुतियों से दर्शक श्रोताओं का अलगाव क्यों होता जा रहा है। मुझे यदि इस संबंध में आप सच्चाई व्यक्त करने की इजाजत दें और अन्यथा न लें तो पुनः भिखारी ठाकुर पर आना चाहूंगा। मैं इसके विस्तार में नहीं जाना चाहता क्योंकि भरतमुनि के उस महान वंशधर की साधना और उपलब्धि का जिक्र ऊपर कर चुका हूं। मैं तो रंगकर्म के नामपर तामझाम खड़ा करनेवाले आज के उन उद्भट रंगकर्मियों से विनम्रतापूर्वक जानना चाहूंगा कि उनकी प्रस्तुतियों में दर्शक श्रोताओं को बाँध रखनेवाला वह करिश्मा कहाँ गया ? इसका जवाब तो उन्हें अपनी अन्तरात्मा से पूछना चाहिए कि जबकि कलाकारिता को समुन्नत करने के लिए इतने साधन प्रसाधन, तकनीक और न जाने क्या क्या इस जमाने में उपलब्ध हैं तो फिर उनकी नाट्य प्रस्तुतियों में वो जज्बा क्यों नहीं पैदा होता जो एक अर्द्धशिक्षित उस कलाकार भिखारी ठाकुर की प्रस्तुतियों द्वारा होता था। आज के रंगकर्मी रंगमंच के विकास व संवर्धन से संबधित मुद्दों और अपनी उपलब्धियों पर बड़ी डींगे हाँकने से बाज नहीं आते और जब किसी रंगमंच की धरा पर उनके पांव जम जाते हैं तो फिल्मों में ताक झांक करने लगते हैं--मुझे इससे भी कोई गिला शिकवा नहीं कि क्यों फिल्मो में जाते हैं। यहां मैं मूल प्रश्न से थोड़ा हटकर फिल्मों की चर्चा करना चाहूंगा और पुनः वस्तु विषय से संबंधित एकाध बातों की चर्चा करते हुए लेखनी को विराम दूंगा।

फिल्मों को लें जो अभिनय से जुड़ी एक तकनीक प्रधान कला विधा है। तकनीक प्रधान मैं इसलिए कह रहा हूं कि फिल्मों में काम करनेवालों का दर्शक श्रोताओं से रूबरू पाला नहीं पड़ता। सबकुछ एक मशीनी प्रक्रिया द्वारा तैयार कर पर्दे पर दर्शकों के लिये प्रस्तुत किया जाता है। पर यहाँ भी वही बाजी मार ले जाते हैं जो रंगमंच और अभिनय कला से निष्ठा और ईमानदारी से जुड़ रहे और उसी 'स्पिरिट' से फिल्मों में भी काम करते रहे। कहने की आवश्यकता नहीं कि फिल्म जगत जो कि ग्लैमर और बॉक्स-आफिस

की दुनियाँ--जहाँ अधिकांशतः कला के नाम पर व्यावसायिकता का नग्न नर्तन होता है-- वहाँ भी ऐसे कलाकार हुए और आज भी हैं जिन्होंने अपनी कला के उच्च आदर्शों और मूल्यों की कीमत पर व्यवसाय से कभी भी समझौता नहीं किया-- कई मिसालें हैं--- उनमें से एक प्रस्तुत है--- प्रमथेश बरुआ की फिल्म 'देवदास' जो संभवत इस सदी के तीसरे या चौथे दशक में बनी, जिसमें कुन्दनलाल सहगल (के० एल० सहगल) और जमुना के साथ बरुआ ने भी रोल अदा किया जिसके प्रथम प्रदर्शन का उद्घाटन कलकत्ते में 'देवदास' के प्रख्यात प्रणेता शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने किया था और फिल्म देखकर यह कहने पर मजबूर हुए कि 'मैंने तो 'देवदास' को कागज के टुकड़ों पर शब्दों द्वारा निर्जीव चित्रित-प्रस्तुत किया था— बरुआ, तुमने और सहगल ने तो मेरे बेजान पात्रों में प्राण फूंक डाले।' एक अमर कथाकार जो स्वयं उच्चकोटि का कलाकार भी था, उसका एक दूसरे कलाकार के प्रति सद्भाव और उद्गार का इससे भी बेहतरीन उदाहरण मिल सकता है, आज यह दुर्लभ ही नहीं असंभव भी प्रतीत होता है। शरत बाबू की इस सर्वकालीन सार्थकता रखनेवाली कृति का दुबारा फिल्मांकन प्रख्यात फिल्म निर्देशक विमल राय ने किया जिसमें दिलीप कुमार, सुचित्रा सेन, बैजयंती माला तथा मोतीलाल ने रोल अदा किये। इन एक्टरों में शोहरत तथा व्यवसायिक उपलब्धि की दृष्टि से सबसे गौण स्थान मोतीलालजी का था (उस वक्त)। अब आइये मूल प्रश्नपर। फिल्म हो या रंगमंच दोनों ही कला विधाओं की आत्मा है अभिनय, जैसे, संगीत की आत्मा सुर। तो जब अभिनय कला की गुणवत्ता की कसौटी पर दोनों 'देवदास' की तुलना करें तो बेशक अभिनय में बाजी मार ले जाते हैं, प्रमथेश बरुआ और सहगल साहब। इन्हें छोड़ दीजिए, ये तो बड़े महान साधक थे,--- कुछ उनका जमाना भी वैसा था-- विमल रायकृत 'देवदास' को लें तो आप देखेंगे कि एक ऐसा दृश्य है जो मात्र कुछेक क्षणों का है जिसमें मोती लालजी शराब के नशे में धुत छड़ी के साथ सीढ़ी चढ़ते दिखाये गये हैं और बदहवासी में सीढ़ी के कोने में खड़े 'स्टीक स्टैण्ड' में छड़ी टांगने का अभिनय करते दिखाए गए हैं। जिन लोगों ने यह फिल्म देखी है, वो अपनी याददाश्त को तरोताजा कर उस दृश्य को अपनी आँखों के सामने लाने की कोशिश करेंगे। इस पल भर के अभूतपूर्व अभिनय से मोतीलालजी ने बिमलराय के 'देवदास' के सारे दिग्गज अभिनेता अभिनेत्री की कलाकारिता को झुठला दिया है। इस फिल्म को जिन्होंने देखा होगा चाहे वह आम या प्रबुद्ध दर्शक हों या वर्तमान अभिनय कला के ठेकेदार--- उनसे मैं पूछना चाहूंगा कि वह कौन सी दक्षता थी--- पटुता थी-- कौन सी उपलब्धि और साधना थी जो मोती लालजी के उस अत्यंत ही अल्पकालीन रोल को हमारे स्मृतिपटल पर अंकित कर अमिट छाप छोड़ गयी। अकबर इलाहाबादी का एक शेर याद आ रहा है, हालांकि वह है तो संगीत के संदर्भ में, पर सभी कलाओं पर चरितार्थ होता है--- "भरते हैं मेरी आह वो फोनोग्राफ में, कहते हैं फीस लीजिए और आह कीजिए।" तो कहने का आशय यह है कि आज कलाकारों में अपनी कला के प्रति ईमान और निष्ठा के अभाव तथा तिजारती तहजीब में सबकुछ यंत्रवत् हो गया है---वो दिलोदिमाग को परितृप्त करनेवाली 'खुशबू' आवे तो कहाँ से। अब तो बेजान कागज के फूल झूठी खुशबू का इजहार कर रहे हैं। आज के अभिनय तथा अन्य सभी कलाओं के दावेदारों से मैं यह कहने पर विवश हूँ कि कहीं किसी बिन्दुपर उनकी ईमान में खोट अवश्य है। इस असलियत को वो नजरअन्दाज नहीं कर सकते। और तुर्रा यह कि ऐसे छुटभुइये रंगकर्मी जिनका एक पांव रंगमंच और दूसरा फिल्म---दो नावों पर रहता है-- ऐसे जो 'आधा तीतर और आधा बटेर' हैं, यो नवोदित उदीयमान रंगकर्मियों को नसीहत देने से बाज नहीं आते कि रंगकर्मियों को पूर्ण निष्ठा, संकल्प और समर्पितता के साथ रंगमंच से जुड़ा रहना चाहिए--- यह कोरा आदर्शवाद तो वर्तमान में राजनीति से जुड़े जिनकी 'कथनी और करनी' मे जमीन आसमान का फर्क होता है, ऐसे लोग बांचते रहते हैं और उन्हें एक हद तक शोभा भी देता है, कारण राजनीति

के अखाड़े में छलछद्मों का भी सहारा लेना पड़ता है—इसलिए तो वह राजनीति और कूटनीति कहलाती है। पर जहाँ कलाकारों का अपने सामर्थ्य से परे दुमुहाँ रवैया हो तो फिर उनके प्रस्तुतिकरणों में वह गहराई और दिलोदिमाग को गुदगुदानेवाले वो क्षण कहाँ से आ सकते जिसके प्रभाव से इन्सान तो क्या पशु-पक्षी तक तन्मय हो विभोर हो उठते थे। दुःख तो इस बात की है कि आज कलाकारों में जिस कलाकारिता की वह रोटी खाते हैं, उसके लिए न तो वफादारी रही—न अपनी कला-साधना के प्रति समर्पणभाव रहा—न कला की बलिवेदी पर अपने को उत्सर्ग कर देने की ललक रही और न गुणवत्ता की कसौटी पर अपना मूल्यांकन करने की नजरिया ही रही—रह गया क्या तो केवल बनिया-बैकाल की तरह सौदाबाजी की प्रवृत्ति—'क्या खूब सौदा नगद है इस हाथ ले उस हाथ दे।' किराना शैली की लब्धप्रतिष्ठ गायिका संगीत नाटक अकादमी एवार्ड से सम्मानित पद्मभूषण गंगूबाई हंगल जो अब भी सौभाग्य से हमारे बीच विद्यमान हैं और लगभग बहत्तर साल की लम्बी आयु में भी उसी रवानगी से अपना गायन-प्रस्तुत कर सुननेवाले के दिलों को झकझोर जाती हैं, उनके निम्न संदेशा से मैं अपने इस विनम्र निवेदन को समाप्त करना चाहूँगा कि, 'पैसे और यश के पीछे मत दौड़ो। कला के लिये त्याग और बलिदान देना सीखो।' ऐसे न जाने कितने कलाकारों के उदाहरण भरे पड़े हैं—जिज्ञासुओं की आवश्यकता है और उससे भी आवश्यक है इन महान कलाकारों की जीवन-दर्शन की निचोड़ को हर कलाजीवी को अपने जीवन में ढालने की—गंगूबाई को ही लें—एक साधारण परिवार की लड़की बगैर किसी सहारे अपनी मेहनत, रियाज और निष्ठा के बूते महान कलाकारों की अग्रिम पंक्ति में अपने को ला खड़ी करने में कामयाब हुई। कौन कह सकता है, त्याग, तपस्या, कुर्बानियाँ विफल जाती है बशर्ते वह सच्ची लगन, गुरुभक्ति तथा दृढ़ संकल्प की भित्ती पर टिकी हों। हो सकता है आज के इस संक्रमण-काल में जहाँ मानवोचित हर तरह के मूल्यों में दिन-प्रतिदिन गिरावट ही आती जा रही है, उन मूल्यों की पहचान की, उन मूल्यों की रक्षा की, उन मूल्यों के व्यवहार की, जीवन उत्कर्ष के लिए कोई सार्थकता या महत्व न रह जाता हो—पर ऐसा जो सोचते हैं वह मिथ्या-प्रवंचना का जीवन जीते हैं और उन्हें यह सफलता और ऊँचाई हरगिज मिल नहीं सकती जो निष्ठावान ईमान के धनिकों को सुलभ होती है। सरस्वती का वरदपुत्र कभी लक्ष्मी की चाकरी नहीं करता। नीति श्लोकों में भी कहा गया है कि 'राजा अपने देश में पूजाता है किन्तु विद्वानों की, कलाकारों की सर्वत्र पूजा होती है—आदर और सम्मान होता है। ये नीतिपरक जीवन-मूल्यों और दर्शन के आदर्श की वास्तविकता और सार्थकता सर्वकालीन सर्वभौम है, और यहाँ मानवता विनाश के कगार पर है, वहाँ तो इसका प्रयोजन अत्यन्त ही वांछनीय है, केवल कोरा कोरा आदर्शवाद नहीं। समाज का वह वर्ग-विशेष जो सदियों से निःसवार्थ भाव से—बगैर किसी प्रतिदान की अकांक्षा के कला-जीवियों को प्रोत्साहन-संरक्षण देता आया आज वह मिट चुका है—ऐसी विषम परिस्थिति में तो कलाकारों के कंधों पर जबर्दस्त दोहरा दायित्व आ पड़ा है।—यदि वह सचेत नहीं हुए—घिनौनी स्वार्थपरत के वशीभूत हो कला को अपने निहित स्वार्थों तथा राजनैतिक हथकंडा बनाकर वैसे कलाकारों और कलासेवियों को जो इस संकटकाल में भी कला के विकास तथा संबर्धन के लिए सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर रहते हैं, यदि ऐसे लोगों को प्रोत्साहन, सहयोग न देकर उन्हें किसी न किसी रूप में चोट पहुँचाने, उनका गला घोंटने पर उतारू रहेंगे तो सच मानिये देश के इस भू-भाग से, जो न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व के भूतल पर हर तरह की सम्प्रदायों (प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्याय) से केवल परिपूर्ण ही नहीं रहा बल्कि अग्रिम रहा—कुछ भी शेष नहीं बचेगा और तब बिहार की इस रत्नगर्भा माटी तथा सर्वशक्तिमान नियन्ता की इस लाड़ली धरती पर रह जायगी दूसरे से उधार मांगी हुई चीजें और पिछड़ापन का बदनुमा धब्बा।

सचिव, बिहार राज्य कला अकादमी
१८३/बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना-८०००१

भरतमुनि की परम्परा.....

(शेष पृष्ठ २८ का)

रखेल को देख कर बटोहिया बिदेशी से वेश्या के कुसंग के खतरों की चर्चा करता है और कहता है—

'छोड़ि द अधरम, मिजाज कके नरमतू, मनवां में करिलेहु शरम बिदेशिया।

धरम का नाव पर, चढ़ि के मउज कर, हर बिरहनियां का दुख के बिदेशिया ।।'

विदेशिया पानी ले आने के बहाने रखेल को टरका देता है और फिर चुपके से अपने घर की राह पकड़ता है। उधर गांव में पुनः धनियां अपने पति के बिछोह में अपनी तड़पन गीतों में बिखेर रही है--

'हाय सइयां हाय, कइ दिहल सून खटोला।
घर में बिछाई के आंगना बिछाई, दुअरा बिछाई कि कोला।'

इस अवस्था में कोई दरवाजा खटखटाता है। धनियां समझती है कि चोर आया है। दीपक भी बुझ गया है और वह बिलखती है कि कौन जुगत करूं चोर से बचने के लिए। बिदेशी बताता है कि वह चोर नहीं है वह तो पूरब से वापस आया हुआ उसका अपना प्राणाधार है। तुरन्त प्यारी किवाड़ खोलती है और पपीहे को बूंद मिल जाती है।

भिखारी ठाकुर ने 'बिदेसिया' नाटक छापने के लिए नहीं, रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए तैयार किया था। गोरखपुर-बनारस से लेकर हावड़ा तक सारे भोजपुरी भाषा क्षेत्र में भिखारी ठाकुर की मण्डली की शोहरत इस 'विदेसिया' नाटक के कारण फैल गई। सोनपुर मेले में, शादी-ब्याह के अवसरों पर भिखारी ठाकुर की सर्वत्र मांग थी। नौजवान, बूढ़े, स्त्रियां—सब पर नशा-सा छा गया विदेसिया का, सब की जबान पर इन गीतों की लड़ियां चढ़ गई। दर्शकों की नब्ज एक बार पा लेने के बाद भिखारी ठाकुर एक-के-बाद-एक नए नाटक तैयार करके उन्हें प्रस्तुत करने लगे। ●

साभार साप्ताहिक हिन्दुस्तान

भारतीय श्रमिक शिक्षा परिषद्

हमारा देश भारत श्रम प्रधान तथा अति प्राचीन हिन्दु राष्ट्र है।

ब्रज किशोर प्रसाद
महामंत्री

● संस्था–

'भिखारी ठाकुर आश्रम'

भिखारी ठाकुर की जन्मभूमि कुतुबपुर गाँव में, जो कि छपरा शहर से लगभग चौदह किलोमीटर पूर्व-दक्षिण दिशा में स्थित है। 'लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम' की स्थापना ३१ अक्टूबर १९७४ ई० को हुई है। आश्रम के भवन निर्माण हेतु जमीन दान किया है—भिखारी ठाकुर के वंशज शिलानाथ ठाकुर तथा गौरीशंकर ठाकुर ने। आश्रम के भवन निर्माण में स्थानीय जनता के अतिरिक्त सरकार से भी वित्तीय सहायता प्राप्त हुई है। आश्रम के भवन की प्रत्येक ईंट पर भिखारी ठाकुर का नाम खुदा हुआ है। आश्रम के अन्तर्गत 'भिखारी ठाकुर पुस्तकालय' भी चलता है। आश्रम की ओर से अब तक भिखारी ठाकुर की समस्त कृतियों पर महेश्वराचार्य द्वारा लिखित विश्लेषणात्मक निबंध संग्रह 'भिखारी' तथा 'भिखारी ठाकुर ग्रन्थावली' के दो भाग प्रकाशित किये जा चुके हैं। प्रकाशित ग्रंथावली के दोनों खंड भिखारी ठाकुर के नाटकों का संग्रह है जबकि तीसरे खण्ड में सारे फुटकर गीत, दोहे, छंद तथा उनकी जीवनी को संकलित किया गया है। आश्रम के कलाकारों ने देश की विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों में ठाकुरजी के नृत्यों तथा नाटकों का प्रदर्शन कर इस लोककला को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस लोक परम्परा को बरकरार रखने के लिए आश्रम 'भिखारी लोक नृत्य परिषद्' नाम से दो नृत्य मण्डलियाँ चलाती है। इसके अलावा आश्रम भोजपुरी के निर्धन लोक कलाकरों के लिए भोजन तथा आवास की व्यवस्था भी करती है। आश्रम में ही भिखारी ठाकुर की प्रतिमा की आधारशिला १३ अप्रैल १९८६ को रखी गई थी। आश्रम के संस्थापक सचिव श्री रामदास 'राही' ने अपनी आगामी योजनाओं से अवगत कराते हुए बताया, आश्रम भिखारी ठाकुर के नाम पर रंगालय, संग्राहलय तथा शोध संस्थान की स्थापना के लिए भी प्रयास कर रही है।

—जख्मी कांत 'निराला'

YOUTH ACTIVITIES ASSOCIATION

H. E. C. TOWNSHIP

सम्पादक
अश्विनी कुमार 'पंकज'

उपसम्पादक
सुरेन्द्र तिवारी

व्यवस्थापक
रंगश्री

प्रबन्ध
सामान्य : मिथिलेश कुमार शर्मा
प्रसार : जितेन्द्र कुमार सिंह
सूरज खन्ना

विशेष सहयोग
सोमित्रो चौधरी
अभिषेक राज

सम्पर्क
रंगश्री
B III / 580
धुर्वा, राँची-834004

मुद्रक
सुकृत प्रेस
भुताहा तालाब, कचहरी रोड,
राँची-834001

मूल्य
एक अंक : तीन रुपये
वार्षिक : बारह रुपये

विदेसिया

भिखारी ठाकुर विशेषांक – २

प्रस्तुति

क्रम		पृष्ठ
१	भिखारी ठाकुर : एक मिथ, एक सच विद्याभूषण	५
२	लोकभाषा के ललित सज्जाकार : भिखारी ठाकुर डॉ० बालेन्दु शेखर तिवारी	७
३	युगचेता भिखारी ठाकुर : जैसा देखा और पाया उमापति पाण्डेय	११
४	हरछन रट राम रहिमाना अंकुश्री	१४
५	बिहार के भोजपुरी क्षेत्र के लोक नृत्य डॉ० चन्देश्वर कर्ण	१७
६	चिन्ता संस्कृति की अभिजात्य मुद्रा उर्मिल थपलियाल	२२

छपते – छपते

बड़े भाई और निकटतम सहयोगी निर्मल कुमार के आकस्मिक निधन से मर्माहत 'विदेसिया' परिवार उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है ।

दिसम्बर १९८८

— सूत्रधार

एक लम्बे अंतराल के बाद 'विदेसिया' का यह अंतिम अंक आपको सौंपते हुए हमें हर्ष के साथ-साथ विषाद भी हो रहा है । हर्ष इसलिए कि अंतिम अंक ही सही, दूसरा अंक आपको सौंप तो सके और विषाद इसलिए कि एक सूत्र जो हमें आप सबों से जोड़ता था, वह टूट जायेगा ।

कोशिश तो थी कि बिहार के रंग आंदोलन में पत्रकारिता की भूमिका को रेखांकित करते हुए तमाशाई-संस्कृति के खिलाफ 'विदेसिया' को खड़ा कर सकूं । मगर हम अपनी इस ईमानदार कोशिश में कामयाब नहीं हो सके ।

हां, कोशिशों का अंत नहीं होता, कोशिशें अंतहीन होती हैं । 'विदेसिया' का अंत अंत नहीं, एक नई शुरुआत का संकेत है ।

उम्मीद है 'विदेसिया' शीघ्र ही आप तक पहुँच सकेगी । नये तेवर, अंदाज और बिल्कुल बदले हुए मिजाज के साथ ।

भिखारी ठाकुर : एक मिथ, एक सच

विद्याभूषण

हिन्दी क्षेत्र की जनपदीय भाषाओं में अपनी अस्मिता की पहचान की चेतना से देर से जुड़ी भोजपुरी एक समर्थ भाषा है । उसका लोक साहित्य पर्याप्त वैविध्यपूर्ण और समृद्ध भी है । लोक गीतों, लोक कथाओं पहेलियों और कहावतों की एक अनूठी शृंखला भोजपुरी क्षेत्र और समाज को देश-देशांतर तक एक कड़ी में जोड़ने में कृत कार्य होती आयी है । पिछले कई दशकों में भोजपुरी साहित्य के इतिहास को रेखांकित और संकलित करने के व्यवस्थित प्रयत्न जारी हैं और इस आयोजन में इसके उन्नायक व्यक्तियों के मूल्यांकन का कार्य भी पुनुरुत्थानवादी उत्साह के साथ शुरू हो गया है ।

यह स्वाभाविक और उचित ही है कि बहुरंगे व्यक्तित्व में धनी और अपार लोकप्रियता के केन्द्र भिखारी ठाकुर भोजपुरी समीक्षकों-विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते । नर्तक, गायक, अभिनेता और नाटककार के रूप में भिखारी की अनेकविध निपुणता आश्चर्यजनक प्रतीत होती है । उनके प्रसंशकों में सुविख्यात लेखकों-कलाकारों से लेकर देश-विदेश में फैले असंख्य सामान्य जन रहे हैं । महा-पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उन्हें भोजपुरी का शेक्स-पीयर कहा है, जगदीश चन्द माथुर ने भरत मुनि की परम्परा में खड़ा किया है और नारायण भक्त ने उन्हें कबीर परम्परा का संत बताया है । बिहार राज्य कला एकादमी के सचिव गजेन्द्र नारायण सिंह ने अपने एक लेख में 26 जनवरी 1954 को पटना मे हार्डिंग पार्क के आम्र कानन में तृतीय बिहार सांस्-कृतिक समारोह में उपस्थित लगभग पन्द्रह हजार दर्शकों पर भिखारी ठाकुर के नाट्य प्रदर्शन के जादुई असर को एक अविस्मरणीय अनुभव बताया है ।

वास्तव में लोकप्रियता की कसौटी पर उन्हें अप्रतिम और अद्वितीय कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी । लगभग अट्ठाईस छोटी-बड़ी पुस्तक-पुस्तिकाओं के प्रणेता भिखारी ठाकुर ने देश-काल की समझ सिर्फ जीवन की पाठशाला से विकसित की थी, तथापि वे पाँच-छह दशकों तक भोजपुरी भाषी जनगण के बीच लोक नर्तक, गायक, अभिनेता और नाट्यशिक्षक के रूप में एक सम्मोहन की तरह छाये रहे । सच भी है कि भिखारी ठाकुर जैसा कोई दूसरा लोक कलाकार इस क्षेत्र में सामने नहीं आया । परिणामतः, वे अपने जीवन में ही एक मिथकीय व्यक्तित्व बन गये थे ।

किन्तु यह कम आश्चर्यजनक नहीं है कि भिखारी ठाकुर के जो अध्येता-समीक्षक उनके कृतित्व और व्यक्तित्व का मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए उन्हें महिमा-मण्डित कर रहे हैं, उन्होंने न तो मिथ को तर्क की कसौटी पर जाँचा-परखा है, न उस मिथकीय व्यक्तित्व की सीमाओं का विश्वसनीय निरुपण ही किया है । नतीजा सामने है कि कोई भिखारी ठाकुर को तुलसी-सूर-कबीर की मध्यकालीन सन्त परम्परा में बिठा रहा है तो कोई कालीदास और शेक्सपीयर से उनकी तुलना कर रहा है । इसी प्रकार, कहीं भिखारी ठाकुर को भरत और भारतेन्दु बताया जा रहा है तो कहीं उन्हें समाज द्रष्टा क्रान्तिकारी साबित करने की कोशिश की जा रही है । कुल मिला कर ऐसी विवेचनाओं से यह धारणा बनती है कि मरणोपरान्त भिखारी ठाकुर एक ह्वाट नॉट बन गये हैं जिन पर ऐसे विद्वान अपने पाण्डित्य की सचिकाओं का बोझ बढ़ाते जा रहे हैं ।

तस्वीर का दूसरा रुख यह है कि पिछले वर्ष भिखारी ठाकुर की शत-वार्षिकी के किसी बड़े आयो-जन की खबर तक नहीं मिली । राज्य सरकार का संस्कृति विभाग, अखिल भारतीय भोजपुरी सम्मे-लन या भोजपुरी एकादमी—किसी ने भिखारी की

सुधि नहीं ली। ऐसा क्यों है कि भोजपुरी के सबसे ख्यात लोक कलाकार और रंगकर्मी की ऐसी भीषण उपेक्षा उनके जन्म शताब्दी-वर्ष में भी हुई।

निश्चय ही तर्केतर भिखारी प्रेम और तर्कातीत भिखारी उपेक्षा-इन दो अतिवादी स्थितियों के बीच ही इस लोक कलाकार की सही जगह तय की जा सकती है — और वह सही जगह उनकी लोकरंजनकारी प्रतिभा के सही संदर्भ में ही खोजी जा सकती है। यह काम उन्हें एक साथ भक्त, सन्त, समाज सुधारक, अभिनव नाट्यशास्त्र के प्रणेता, नाटककार, कवि और बहुमुखी रंगकर्मी के रूप में चित्रित कर विराट् युग प्रवर्त्तक व्यक्तित्व खड़ा करने के शब्दाश्रित आडम्बर के जरिए नहीं किया जा सकता।

भिखारी ठाकुर मूलत: भाव प्रवण कवि और सम्पूर्ण रंगकर्मी थे। भाषा और भाव से जुड़े-बन्धे छन्दों में करुणा और व्यथा की मार्मिक किन्तु निराडम्बर अभिव्यक्ति उनकी जमा पूँजी थी तथा गायन, नर्तन और अभिनय का अति कुशल उपयोग करते हुए उन्होंने नाट्य प्रदर्शनों के लिए एक विशाल दर्शक-श्रोता समाज बनाया था। यह कोई मामूली-सी उपलब्धि नहीं। अंग्रेज सरकार से उन्हें राय बहादुर का खिताब मिला, आम जनता से प्यार और सम्भ्रांत समाज में पहचान। लगभग साठ वर्षों तक अपने नाटकों के अनवरत प्रदर्शनों की बेमिसाल लोकप्रियता के बूते वे एक ऐसे जन कवि और लोक कलाकार के रूप में अपनी पहचान बनाने में सफल हुए थे जो जीवन काल में ही किंवदन्ती बन गया।

भोजपुरी के शब्द विन्यास की अचूक व्यंजना शक्ति के बहुविध शिल्पी के रूप में भिखारी ने अपनी अद्भुत सामर्थ्य का परिचय दिया है। उनके नाट्यालेखों में गद्यांश तो नहीं संकलित हुए हैं, किन्तु सम्वादों में अर्थवादी कौशल से चमत्कृत हो जाना पड़ता है। इन रचनाओं में सहज बुद्धि और बहुश्रुत ज्ञान के मिश्रित उपयोग से जन्मे परिवार-जीवन के पारखी पर्यवेक्षक की झलक मिलती है। उनकी इसी मधुकरी वृत्ति से अद्भुत हैं वे नाटकीय प्रसंग जिनमें बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, दहेज-प्रथा, प्रवास-जीवन, प्रोषित पतिका नायिका समेत सामाजिक रूढ़ियों का अवसरानुकूल समायोजन किया गया है। इस प्रकार, भिखारी ठाकुर की कलाकारिता में वेदना और व्यंग्य की युगलबन्दी के भी दर्शन होते हैं।

तथापि उनकी सीमाएँ सुस्पष्ट हैं जो लोग उन्हें समाज चेता और युग प्रवर्तक सिद्ध करने पर आमादा हैं, उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि भिखारी ठाकुर के कला संस्कार मूलत: परम्पराश्रित थे और सामाजिक कुरीतियों पर हल्की-फुल्की चोट करने के बावजूद उनकी सोच का चौखटा मध्यकालीन ही था। देवी-देवताओं और अवतारों लीलाओं के प्रति उनके आकर्षण में मध्यकालीन धार्मिक विश्वास ही उत्प्रेरक थे कि संत कवियों की तरह की भक्ति या साधनात्मक ज्ञान के प्रति एकान्त समर्पण। सदाचार के प्रति परम्परानुमोदित धार्मिक मान्यताएँ ही उनकी ईशपरक रचनाओं में व्यक्त हुई हैं। देश काल की परिस्थितियों पर उनकी कमजोर वैचारिक पकड़ इस बात से भलीभाँति उजागर होती है कि स्वाधीनता के बहुआयामी संघर्ष की कोई चेतना उनमें नहीं झलकती। सामन्ती ढाँचे में पल्लवित-पुष्पित आचारों के प्रति वे श्रद्धावनत थे। सामाजिक ढाँचे की कतिपय असंगतियों पर उनकी व्यंग्यात्मक उक्तियों को किसी व्यवस्थित सोच से उत्प्रेरित नहीं माना जा सकता।

वस्तुत:, वे पारिवारिक जीवन दाम्पत्य सम्बन्धों के विशृंखल दायरे में अपने नाटकों के चरित्र और परिवेश उठाते रहे तथा उनका भावावेगपूर्ण एवं अतिरंजित नाटकीकरण उपस्थित करते रहे। कविताई में वे विप्रलम्भ शृंगार के रसिया थे। यही उनकी कलाकार की प्रकृत भूमि थी जिस पर जीवन पर्यन्त बागवानी करते रहे थे। कहना न होगा कि उनकी सर्वोत्कृष्ट प्रस्तुति बिदेसिया की भावभूमि भी यही है।

इसके बावजूद, भोजपुरी के कवि और नाटककार के रूप में उनकी उपलब्धियों का विशिष्ट

(शेष पृष्ठ २४ पर)

लोकभाषा के ललित सज्जाकार भिखारी ठाकुर

— डॉ० बालेन्दु शेखर तिवारी

लोकनाटको को लोकरंजन का निपट आडम्बरहीन साधन कहा गया है— शिष्ट नगर मंच से भिन्न स्तर वाला और विशाल जनजीवन को मनोरंजित करने वाला एक तथाकथित देहाती उपक्रम। देवालयों, मेलों, सांस्कृतिक केन्द्रों आदि से उपजी लोकनाटकों की परम्परा शायद परिष्कृत रुचि के नाटकों से भी पुरानी है। समय के साथ लोक नाटकों की कथा में बदलाव आता गया है, लेकिन उनकी आत्मा यथावत है। लोकभाषा में स्थानीय जनसमूह को तरंगित कर डालने की उनकी क्षमता ने ही तमाम राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आँधियों के बीच भी लोकनाटक की लोकाश्रित छवि को सुरक्षित रखा है। अपनी सर्जना को व्यापकतर लोक प्रियता और प्रभावसत्ता देने के लिए लोकनाटककारों ने भाषा की शक्ति का भरपूर उपयोग किया है। लोक भाषा की ललित सज्जा के इस विनियोग के प्रमाणस्वरूप भोजपुरी से समर्थ लोक नाट्यकार भिखारी ठाकुर की नाट्यभाषा के उपकरणों की पड़ताल की जा सकती है। भिखारी ठाकुर ने कलकत्ते से वाराणसी तक के विस्तृत भूभाग पर अपनी भाषिक क्षमता के सहारे ही लोकमानस पर साम्राज्य स्थापित किया। बोलचाल में प्रचलित भोजपुरी और भोजपुरी मिश्रित हिन्दी को अपनी मनीषा, अनुभूति और आवश्यकता के अनुसार माँज कर 'बिदेसिया' के रचयिता ने लोक नाटकों की एक संगत एवं विश्वसनीय आकृति का निर्माण किया है। इस क्रम में भिखारी ठाकुर ने जिन शब्दों, विशेषणों, सादृश्यों, विचलनों, मुहावरों और कहावतों का उपयोग किया है, उनका सीधा सम्बन्ध लोकनाटक की आवश्यकता से है। बिदेसिया, भाई विरोध, बेटी-वियोग, कलियुग प्रेम, राधेश्याम बहार जैसे अपने सभी लोकनाटकों में भाषा की ललित सज्जा के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने यही सिद्ध किया है कि बोलचाल की देहाती भाषा भी सावधान रचनाकार के हाथों में कितनी प्रभावशाली तथा अर्थबहुल हो जाती है। अपने विचारों और भावों की सरल और स्पष्ट रूप में वाणी देना ही बिदेसिया के प्रणेता का लक्ष्य है, यह उनकी भाषा के शैलिकीय उपकरणों से प्रमाणित होता है।

भोजपुरी की शक्ति और बहुआयामी अर्थचेतना से सुपरिचित होने के कारण भिखारी ठाकुर ने भोजपुरी समाज में प्रचलित ठेठ ग्रामीण शब्दावली का उपयोग अपने सभी लोक नाटकों में किया है। जैसे—

ठकठेनि, पलानी, बउराहिन, धँसोर, नीमन, बुरबक, जवन, दीयर, लुभुकी, सुरबुरिया, अझुराइल फेन, फुहरी, भभुन, छछनल, भाकुर, बहुरल, (बिदेसिया), लरकोरा, चुहानी, चीकनढठ, छछनत, (भाई-विरोध), लेंढ़ा, डेकारत, करिखाहा (बेटी-बिरोध), बकलोल, छीपा (कलियुग प्रेम), ओरहन, अबाटी, झकझूमर (राधेश्याम बहार)।

ग्राम सुलभ जिन शब्द समूहों का उपयोग भिखारी ठाकुर ने किया है, उनकी लम्बी तालिका बनाई जा सकती है। वास्तव में इन खालिस भोजपुरी शब्दों के चयन द्वारा ही उनके नाटकों में आकर्षण का व्यापकतर आयोजन हुआ है। ग्रामीण एवं जनोचित वातावरण की सर्जना के लिए भिखारी ठाकुर ने उन सारे स्वाभाविक पदबन्धों का इस्तेमाल भी किया है जिनकी उपस्थिति भोजपुरी भाषा-भाषियों के बीच बिना किसी लाग-लपेट के पाई जाती है। ऐसे कतिपय पदबन्ध हैं—

गहना-गुरिया, कती-मूटी, हती-मूटी, चीठी-चपाठी, सर-सवांग, अन-जल, जूना-कुजूना, सिंगार-पटार (बिदेसिया), परला-हरला, लगो-चंगो (भाई विरोध), हाला-गुदाल, बर-बरात, फूहर-पातर (बेटी वियोग)।

भोजपुरी समाज में प्रचलित अर्थहीन पदबन्धों के उपयोग से ही भिखारी ठाकुर ने परहेज नहीं किया है। जैसे — 'बिदेसिया' नाटक में ही उन्होंने लड़िका-फड़िका, जेवर-फेवर का इस्तेमाल किया है। अपनी नाट्यभाषा को आम लोगों के अधिक निकट पहुँचाने के लिए मजग रंगकर्मी ने उन सारे शब्द-समूहों को यथावसर स्वीकार किया है, जो भोजपुरी भाषियों के बीच स्वीकृत रहे हैं। स्वभावतः लोक नाटकों के लिए संस्कृत के अमर शब्दभण्डार से मूल तत्सम शब्दों के चयन से लेकर विदेशी मूल के अभारतीय शब्दों की प्रयुक्ति तक भिखारी ठाकुर की शब्दासज्जा फैली हुई है। तत्सम शब्दों के जरिए पाण्डित्य का प्रदर्शन करने का व्यामोह उनके मन में नहीं था। इसीलिए कठिन और दुर्बोध तत्सम शब्दों के स्थान पर केवल लोकस्वीकृत संस्कृत शब्द ही उनके नाटक में हैं। जैसे —

कृपा, स्वामी, अकथ, धर्म, उपहास, भिक्षा, प्रातकाल, कामिनी, प्रेम, पुण्य, पातक (बिदेसिया), मृदु (भाई बिरोध), श्राद्ध, नन्दीमुख, कदापि, अशुद्ध, अक्षर, प्राण, शरण, अतिशय, शील, शोभा, ग्राम (बेटी बियोग), पक्ष, अधर्मी, जगदम्बा, त्राहि, ज्ञान, भ्राता (कलियुग प्रेम), क्रोध, ऐश्वर्य, अक्षर, कानन, जगत, (राधेश्याम बहार)।

भोजपुरी में ऐसे शब्द प्रचुर मात्रा में हैं, जिनका मूल संस्कृत रूप बदल गया है। तत्सम से रूपांतरित ऐसे भोजपुरी शब्दों का व्यापक चयन भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों के लिए किया है। जैसे –

मूलतत्सम	रूपांतरित	नाटक
सन्देश	सनेस	बिदेसिया
मन्दिर	मन्दिल	,,
यात्रा	जतरा	,,
अवगुण	अयगुन	,,
नेत्र	नेतर	,,
वज्र	बजर	,,
प्राण	परान	,,
कृपण	किरपिन	,,
बुद्धि	बूधी	भाई विरोध
भक्षिणी	भछिनी	,,
अत्याचार	अतयाचार	,,
दक्षिणा	दछिना	,,
आशीर्वाद	आसिरवाद	,,
उपवास	उपास	कलियुग प्रेम
दारिद्रय	दलीदर	,,
अपयस	अजस	राधेश्याम बहार

सामान्य जन के साथ अपने नाटकों को जोड़ने के क्रम में भिखारी ठाकुर ने विदेशी मूल के शब्दों का प्रयोग निर्बाध तौर पर किया है। अरबी-फारसी मूल के उर्दू शब्द उनके नाटकों में लगातार उपलब्ध हैं। कुछ उदाहरण हैं —

तकलीफ, तबीयत, नगद, बाजाप्ता, मस्त, खराब, साफ, मजाक, खत, खबर, मसूल, दीदार, दीन, दुनिया, दाग, सूरत, कसूर (बिदेसिया), मूल्क, उमर, अफसोस (भाई बिरोध), साफ, जमाना, दिल, साहेब, सलाम, नालायक, खानदान (बेटी बियोग), नतीजा, चुगलखोर, खाख, बेईमान, नवाब, जवाब, कलेजा (कलियुग प्रेम), मजेदार, आफत, राहत, दाम, हुकुम, फजीहत, दफा, दिल्लगी, तजबीज, दरबार, शहजादा, जुल्म, खिल्लत, बजाज (राधेश्याम बहार)।

भोजपुरी में इस कोटि के उर्दू शब्द भी रूपांतरित होकर सामने आए हैं। भिखारी ठाकुर की नाट्यभाषा में भी ऐसे विचलित प्रयोग अच्छी संख्या में उपलब्ध हैं। जैसे—

मूल उर्दू	रूपांतरित	नाटक
मुरब्बा	मोराबा	बिदेसिया
जुल्मी	जुलुमी	,,

कलेजा	करेजा	बिदेसिया
नीलाम	लीलाम	भाई विरोध
शिकायत	सिकाइत	,,
सन्दूक	सनूख	बेटी वियोग
जिन्दगी	जिनिगी	,,

इधर के लोकनाटकों ने तत्सम और देशज शब्दों के समानान्तर स्वच्छन्दता से उर्दू और अंग्रेजी के विदेशज शब्दों को भी स्वीकार किया है। इसका कारण यही है कि समस्त भारतीय भाषा परिवारों में अभारतीय मूल के शब्द बिना किसी संकोच के पचा लिए गए हैं। इसीलिए भिखारी ठाकुर के नाटकों में अंग्रेजी के कुछ शब्दों को पाकर आश्चर्य नहीं होता। आज के सामान्य व्यवहार में प्रचलित शब्द है ये। जैसे—कोट, रेल, रिंग, चार्ज, डबल (बिदेसिया), लाउडस्पीकर, डबल, लेटर बाक्स (भाई विरोध), पोस्ट (कलियुग प्रेम)।

मूल अंग्रेजी शब्दों का भोजपुरी संस्करण भी भिखारी ठाकुर ने प्रस्तुत किए हैं। टीसन, टिकट, बिसकुट, पिलेग आदि 'बिदेसिया' नाटक में प्रयुक्त शब्द ऐसे ही हैं। भोजपुरी के इस विलक्षण लोक-नाटककार के भाषिक लालित्य का एक अनूठा पक्ष ये भी है कि अभिव्यंजना के लिए अपेक्षित विशेषणों और सादृश्यों के सजग विन्यास द्वारा भिखारी ठाकुर ने भोजपुरी की शक्ति का उद्घाटन किया है। रंग, स्पर्श, गंध आदि पर केन्द्रित विशेषणों के निर्माण में यह शक्ति नजर आती है —

चाकर छाती	बिदेसिया
साँवर बरन	,,
पापिन गिधिनियाँ	,,
पीयर दगदग	,,
करिया कुचकुच	,,
लाल भभूका	,,
बजर केवरिया	,,
काँच उमिर	,,
साँवर गोरिया	,,

भिखारी ठाकुर का विशेषण—विधान का, के भर के उपयोग द्वारा भी सुगठित हुआ है। ऐसे सभी विशेषण पदबन्धों द्वारा लोकभाषा के मूलभूत अभिलक्षणों को साकार किया गया है —

सुगा के ठोर	बिदेसिया
हुलिया के पुलिया	,,
पथर के छाती	,,
धरम के नाव	,,
घूठी भर पानी	,,
प्रेम का गहना	,,
जहर के पुरिया	भाई विरोध
प्रान के अधार	,,
चलनी के चालल दुलहा	बेटी विधोग
आँवा के पाकल दुलहा	,,
प्रेम के गारी	,,
संतोख के पहाड़	,,
गोरस के चोर	राधेश्याम बहार

वस्तुतः अपनी रचना को वैविध्य एवं लोकधर्मी छवि प्रदान करने के लिए ही भिखारी ठाकुर ने शब्दों और विशेषणों का ऐसा सधा हुआ चयन किया है। निश्चित रूप से कार्य, रूचि और अर्थ की गति प्रदान करने वाली इस चयन प्रक्रिया का प्रभाव उनके नाटकों में साकार सादृश्य विधान पर भी पड़ा है। मूर्त्त और अमूर्त्त, मूर्त्त और मूर्त्त, अमूर्त्त और अमूर्त्त के मध्य सादृश्य स्थापित करने के लिए भी नाटककार ने भोजपुरी की सादृश्य विधायी विलक्षणता का उपयोग किया है। जइसे, लेखा, सरिस, सम आदि पदों के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने अनेक लहरदार सादृश्य व्यंजक प्रयोग किए हैं, जैसे —

'आवत जात देरी न लागी, **जइसे** घोड़ा के रेस'
— (बिदेसिया)

'बनवाँ **सरिस** भवनवाँ बटोहिया' — (बिदेसिया)

'मोरवा मचावे **जइसे** सोरवा गरज सुनि'
— (बिदेसिया)

'कुत्ता **जइसे** हाड़ चाटे' — बिदेसिया)

'बोतल नहीं जहर के पुरिया, **जइसे** चुपकारिन देव-कुरिया' — (भाई विरोध)

'आम **लेखा** पालल दुलहा' — (बेटी बियोग)

'बिजुली छटा सम बिदुली सोहाई हे'

— (बेटी बियोग)

'दुख मोरा लागत बा बहाड़ लेखा'

— (बेटी बियोन)

'करिखाहा हाँड़ी लेखा मुँह' — (बेटी बियोग)

सादृश्यव्यंजक प्रयोगों द्वारा भिखारी ठाकुर ने अपनी नाट्यभाषा की सजावट का अनुपात नियंत्रित किया है। यही काम उन्होंने विविध मुहावरों और कहावतों के माध्यम से भी प्रमाणित किया है। उनके नाटकों में हिन्दी और भोजपुरी के कहावतों और मुहावरों की उपस्थिति यह सिद्ध करती है कि बोल चाल का मजा मुहावरेदार भाषा में ही आता है। मुहावरों के साथ भिखारी ठाकुर की गहरी मैत्री के नमूने उनके सभी नाटकों में बिखरे हुए हैं, जैसे—

१	कान काटना कान काटले बिया,	बिदेसिया
२	कल नहीं पड़ना का कल परो हो दादा	बिदेसिया
३	पगड़ी हल्की होना पगरी हमार हलुक हो जाई	बिदेसिया
४	जी का काल हो जाना जीव के काल हो गइल	बिदेसिया
५	पुक्का फाड़ कर रोना रोअतरी पुका फारि	बिदेसिया
६	घर फोड़ना दादी फोरत बाड़ू घर	भाई बिरोध
७	गुण गाना जिनिगी भर गुन गइबू	भाई बिरोध
८	पगड़ी डूब जाना सगरी से पगरी डूबि जाई	भाई बिरोध
९	दाँत लगना देखि के लोग के दांत लागी	बेटी बियोग
१०	आँख में धूल पड़ना तोहरा आँख में परल धूर	बेटी बियोग
११	भाड़ा उतारना भखौटी उतारब	कलियुग प्रेम
१२	कान बहरे होना सुनत-सुनत बहिर भईल कान	राधेश्याम बहार

इन मुहावरों की ही तरह भिखारी ठाकुर की नाट्यभाषा में मौजूद कहावतों को भी अलग से पहचाना जा सकता है। ऐसी लोकोक्तियों की कुछ बानगियाँ हैं —

१ 'ऊधो के लेना ना माधो के देना'

२ 'दूध के दूध, पानी के पानी'

३ कुकूर के पोछी सोझा होत नहीं मँडला से'

— भाई बिरोध

४ 'जहँवा जइसन, तहँवा तइसन'

५ मुडली माथ प पानी पड़ल, डगर गइल'

— बेटी बियोग

लोकभाषा के आकर्षण को अधिकाधिक चमकदार बनाने में सहायक उपकरणों को भिखारी ठाकुर ने सहजता एवं सरलता के साथ अंगीकार किया है। उनके नाटकों की भाषिक सज्जा केवल शब्द चयन और विचलन, विशेषण और सादृश्य, मुहावरों और लोकोक्तियों के विनियोग तक ही सीमित नहीं है। भिखारी ठाकुर की सृष्टि में भाषा को उसका स्वाभाविक संस्कार प्राप्त है। इसी के सहारे हास्य और शृंगार, समाजसुधार और बारहमासा, लोकरागों और शास्त्रीय छन्दों का सजीव उपस्थापन हो सका है। सम्प्रेषण और अर्थ की विभिन्न छवियों को भिखारी ठाकुर ने लोकधरातल पर मूर्त्त किया है। इसी कारण उनके नाटकों में सुगठित शैलीय सज्जा ने एक लोकरंजक उपवन का रूप धारण कर लिया है, जिसमें प्रभाव की सूक्ष्मता और लोकरूचि से सम्पन्न अनेकानेक मनोहारी क्यारियाँ लगी हुई हैं।

युगचेता भिखारी ठाकुर : जैसा देखा और पाया

उमापति पाण्डेय

उनका यह दावा कि चाहे कोई किसान हो, मजदूर हो, बे पढ़ा हो, पढ़ा हो, निर्धन हो, धनवान हो—वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो, जहाँ भिखारी ठाकुर की विदेसिया मण्डली पहुँच गयी कि वहाँ हलचल मच जाएगी, और वे रात आँखों में काट लेने के लिए मजबूर हो जायेंगे। भिखारी ठाकुर वहाँ भिखारी बन दरवाजे-दरवाजे भिक्षा की टेर नहीं लगायेंगे, बल्कि खेसारी की कटनी करके अपनी जीविका चलाने वाला मजदूर भी, अपनी कमाई का अंश दान उन्हें दिए बिना नहीं रह सकता। यह उनकी गर्वोक्ति नहीं, बल्कि हकीकत बन गई थी—

दिन में कटब खेसारी।
रात में ले जइहन भिखारी॥

एक तो यों ही लोकनाट्य में रंगमंच, प्रसाधन, ब्रेक ग्राउण्ड, सिन-सिनरी, ग्रीन-रूम आदि आग्रही नहीं रहते, लेकिन भिखारी ठाकुर इससे भी दो डेग आगे थे। एक अलग टेण्ट की व्यवस्था हुई तो ठीक, नहीं तो मंच के एक कोने में कोई भी कपड़ा तान लिया, प्रसाधन-परिवर्तन कर लिया गया, मेक-अप हो गया, प्रशिक्षण भी दे दिया गया, मंचन के दौरान प्रयोग में आने वाले साज समानों की व्यवस्था भी कर ली गई, निर्देशन भी चलता रहा, पात्रानुकूल अभिनय भी होता रहा, संगीत की रसभरी गगरी भी छलकती रही, और मन अभी बोझिल हुआ नहीं कि लबार (विदूषक) टपक पड़ा, और ठहाकों का समन्दर लहरा दिया।

यह मानव का स्वभाव और उसकी प्रकृति है कि भावातिरेक की स्थिति में अंग-संचालन द्वारा उसकी भावाभिव्यक्ति, संगीतात्मक प्रक्रिया तथा अनुकरणात्मक चेष्टा का रूपांतर होता रहता है। इस नैसर्गिक मर्म को भिखारी ठाकुर सही रूप में पहचानते थे और उसे उन्होंने व्यावहारिक रूप दिया, सार्थक आकार दिया, संश्लिष्टता को सहज-सरल बनाया तथा मूक अभिव्यक्ति को ओज-भरा सशक्त स्वर दिया। उन्होंने नाट्य शास्त्र, मनोज्ञान शास्त्र, समाज शास्त्र, धर्म शास्त्र का कभी अध्ययन, मनन एवं अनुशीलन नहीं किया, लेकिन अपने रचित अभिनीत नाटकों में बुद्धि-चातुर्य एवं तलस्पर्शिनी दृष्टि से सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोही भावना, मानव मन की संवेदनशीलता, पेट की धधकती आग की दाहकता का सजीव एवं मार्मिक चित्रण उन्होंने जिस कुशलता से किया, वह आज भी मूर्द्धन्य नाटककारों के लिए एक चुनौती है।

भिखारी ठाकुर का कमाल था कि एक ही व्यक्ति एक से अधिक रूपों में अपने को बदलता जाता, भिन्न-भिन्न पात्रों के विभिन्न आचरण एवं उसके हाव-भाव को अपने में संजोता रहता, उसी के अनुरूप अपने को ढालता जाता और दर्शकों को अपनी ही धारा में बहाए लिए चलता। उनकी अभिव्यक्ति का स्वर इतना सटीक, सरल, सहज और स्वाभाविक होता कि दर्शक आत्मविभोर हो जाते। प्रसाधन एवं रूप-परिवर्तन का कार्य दर्शकों की थोड़ी-सी आँख बचा कर ही कर लिया जाता।

विदेसी जीविकोपार्जन के लिए पूर्वी बनीजिया कही जाने वाली नगरी-कलकत्ता जाने को होता है। नवोढ़ा पत्नी घर रह जाती है। मेहनत मजूरी करके पैसा कमाने की वही एक जगह है, जहाँ से कोई खाली हाथ नहीं लौटता। मादक जवानी की नशीली बयार पत्नी के पोर-पोर में ऐंठन ला देती है, और डहक-डहक विदेसी से कह उठती है—

गवना कराई पिया घर बइठवले
अपने चले रे परदेस रे विदेसिया।

यह मर्मस्पर्शी दृश्य जब आँखों के सामने से गुजरने लगता, हृदय भर आता और आँखें छलछला जाती।

चलने के समय विदेसी की यह ठिठोली व्यंग्यात्मक होती हुई भी मन को झकझोर देती—

हम जाइब परदेस के, घर में कर बहार ।
बरस दिनन पर आइब, सुनिल छयल छबीली नार ॥

कोसी की बाढ़ की तरह उफनती जवानी को बहलाने वाला आसन्न अकेलापन, जले पर मरहम की जगह नमक ही छिड़क देता, और नहले पर दहला फेंकती हुई उसकी छैल छबीली पत्नी, जीवन और जवानी को खींचकर ले जाने की एक अन्य समस्या चलने के समय विदेसी के सामने खड़ी कर देती है—

चलि जइब परदेस के, घर में रहब अकेल ।
कहे भिखारी कइसे चलिहें, बिन इंजिन के रेल ॥

इसी क्रम में एक अन्य प्रसंग भी कम प्रभावोत्पादक नहीं है। प्राकृतिक ऋतु परिवर्तन का लाक्षणिक प्रभाव जीवन में पड़े बिना नहीं रहता, और उसी के अवगुठन में आम के पेड़ को माध्यम बना कर, नयी नवेली कामिनी अपनी जैविक काया की अनिवार्यता को, किस लक्षणा भाव से कुशलतापूर्वक विदेसी के सामने प्रकट करती हुई कहती है—

अमवा मोजरि गइले, लगले टिकोरवा से
दिन-पर-दिन पियराई रे विदेसिया ।
एक दिन बहि जइहें जुलमी के अन्हिया से
डाढ़े पाते जइहें भहराई रे विदेसिया ॥

यह गंभीर चेतावनी रहती, उसकी गदराई जवानी की, उसके संभावित खतरे की। जब सामने से 'विदेसिया' नाटक का यह दृश्य बेरहमी से सरकने लगता, आँखें नम हो जातीं, और मूक संवेदना को वाणी मिल जाती। कलकत्ते की लम्बी यात्रा भी दो-चार डेगों में ही कर ली जाती।

विरह-कातर निश्छल वियोगिनी के असह्य एकान्त का नाजायज फायदा उठाने के लिए बटोही जब हरकत में आता, दर्शकों की आँखों से रोष टपकने लगता। इस अनर्थ के प्रतिशोध में उत्तेजना के स्वर कर्कश हो जाते, और भुजाएँ फड़क उठतीं। यह थी भिखारी ठाकुर के नाटक तथा अभिनय की पूर्णता, नाट्य कौशल की उत्कृष्टता और सहजता की की पराकाष्ठा। विश्व के नाट्य रंगमंच पर उनके जैसा नाटककार सह-अभिनेता सह निर्देशक सह व्यवस्थापक सह संगीतकार सह गीतकार न देखा गया और न सुना ही गया।

सामंती युग था। उम्र भले ही कब्र की प्रतीक्षा कर रही हो, लेकिन कामातुर मन की हवस षोडशी को अंकशायिनी बनाने के लिए हाथ-पैर पटकती रहती। गरीब की बेटी का मोल-तोल होता एक मवेशी की तरह, और हरसिंगार की टहनियों पर मचलते लाल-पीले फूलों-सा उसके रंगीन सपनों को निर्ममतापूर्वक रौंद दिया जाता। भिखारी ठाकुर ने अपने 'बेटी बेचवा' नाटक में इसका जो मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया, वैसी सजीवता अन्यत्र नहीं मिलती।

पुत्री बिलख-बिलख अपने बाप से उपालम्भ के रूप में कहती है कि रुपया गिना लिया और पगहा धरा कर मालधनी के हाथों, चेरि से छेरी (बकरी) बना कर उस एक पशु के सदृश्य बेच दिया—

रुपया गिनाइ लिहल, पगहा धराइ दिहल ।
चेरिया से छेरिया बनवज हो बाबूजी ॥

फिर वह रो-रो अपने बाबूजी से पूछती है कि पूर्व जन्म में उससे कौन सी ऐसी चूक हो गई कि उसके सुख-सपनों का कुछ भी ख्याल न करके, बूढ़े वर से उसका विवाह कर दिया गया—

बूढ़ वर से कइल विवाह, बेटी का न कइल खेयाल ।
पुरुब के कवन कसूर हो बाबूजी ॥

जब से बेटी ससुराल गई है, उसका रोग-शय्या पर पड़े बूढ़े पति की सेवा-सुश्रुषा में ही दिन वो रात

कट जाता है। कफ से नली जकड़ गई है, रात-दिन बिस्तर पर ही पखाना-पेशाब होता रहता है और उसका सारा समय उसे काछने (साफ करने) में ही बीत जाता है। कलप-कलप कर जब बेटी यह मर्मान्तिक दुखड़ा अपने बाबूजी से सुनाने लगती, कलेजे में हूक उठ जाती और पत्थर हृदय भी पसीजे बिना नहीं रहता—

कफ से भरल बा नड़ी, रात दिन होखे ला झड़ी।
हिलिया काछत दिनवा बीतेला हो बाबूजी॥

इस बेबसी पर मानवता कराह उठती, लेकिन किसी की हिम्मत नहीं पड़ती कि अपनी दर्दभरी आहत आवाज को होठों से बाहर वह निकाल सके। यह बेमेल विवाह, यह सामाजिक अत्याचार, यह अधन्य प्रचलन भिखारी ठाकुर के अन्तर्मन पर चोट पर चोट देने लगा और उन्होंने यह इनकलाबी नाटक लिखा — "बेटी बेचवा"। जब यह मंच पर आया तो इसने समाज के शोषित वर्ग में अभूतपूर्व क्रांति की नयी लहर पैदा कर दी, आंखों से चिनगारी फूट निकली और जिसने भी इसे एक बार देखा, वह इस कुप्रथा के कुचक्र में नहीं फंसने-फंसाने का संकल्प सा निश्चय कर बैठा। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि सती प्रथा पर अंकुश लगाने के लिए, जो जन-जागरण महान समाज-सुधारक, साधन सम्पन्न राजा राममोहन राम पैदा किए, अपने सीमित साधनों के बावजूद भिखारी ठाकुर भी बेटी की बिक्री पर रोक लगाने में, अपने जनपद (सीमा क्षेत्र) में उनसे उन्नीस नहीं पड़े। उनके जैसा प्रचारक तो वह नहीं बने, लेकिन अपने रचित अभिनीत नाटकों के सशक्त माध्यम से उन्होंने जन-मानस में हिलोर पैदा कर दी। सामाजिक विसंगतियों, यंत्रणाओं एवं अत्याचारों पर सीधा और तीखा प्रहार किया तथा जन-जन को उद्वेलित कर दिया।

प्रचार माध्यम के लिए विज्ञापनों, भड़कीले पोस्टरों, पम्फलेटों के चक्कर में वह नहीं पड़े और चटकीले, रंगीले पर्दों की भी समस्या मोल नहीं ली। सारी व्यवस्था दो-चार चौकियों पर कर ली गयी। वह तो स्वयं आशु कवि थे, जैसा प्रसंग आया वैसी मिनटों में पद्य-रचना कर ली और संगीतात्मक धुन निकाल डाली। उनकी आवाज की बुलन्दी इतनी तेज थी कि हजारों-हजार भी भीड़ को भी चीरकर उनके स्वर आगे की ओर खिसकते जाते।

भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों में जहाँ व्यक्ति और समाज की विशृंखलताओं और उसके भानवीय पक्ष को उजागर किया, वहीं उसके आर्थिक पक्ष की विद्रूपता का भी चुभन-भरा चित्रण, यथार्थ के धरातल पर कर दिया है। पैसा खून के रिश्ते में टकराव ला देता है, वैर-विरोध का टंटा खड़ा कर देता है, हत्या तथा लोमहर्षक कांडों का सूत्रधार बन जाता है, सामाजिक जघन्यता का संचालन करने लगता है, और इन सब के जीवन्त उदाहरण बन गए — 'भाई विरोध', 'दामाद बध', 'बेटी बेचवा', 'विदेसिया' आदि उनके नाटक।

वृद्धावस्था में भी जब वह मंच पर आते उनमें वही रौनक, वही अभिनय की सजीवता, वही तेज-तर्रार आवाज, वही विद्युत धारा-सी प्रवहमान, पैरों में गति देखने में आती, जो दर्शकों को विमुग्ध कर देती। मरने के बाद भी उनके नाम पर वह मंडली बहुत दिनों तक अपनी साख जमाए रखी, और बहुतेरों में उनके जिन्दा रहने का भी भ्रम बना रहा। यह थी उनकी लोकप्रियता की अन्तिम छोर। ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार द्वारा वे समान रूप में सम्मानित किए गए, फिर भी उनमें दंभ की गंध तक नहीं आने पायी और उनका स्वभाव कमल की डण्डी के समान कोमल ही बना रहा। 'विदेसिया' शब्द के उच्चारण मात्र से युगचेता, निष्णात लोक रंगकर्मी भिखारी ठाकुर आँखों के सामने थिरक उठते हैं।

—:०:—

हर छन रट राम रहिमाना ... ...

— अंकुश्री

आसपास बिखरे सन्दर्भों से प्रभावित होना मनुष्य की सहज प्रवृति है। कलाकार उन सन्दर्भों के प्रभाव को अपनी कला के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। पारिवारिक, आर्थिक विसंगतियाँ और समाज की कुरीतियाँ भिखारी को भी प्रभावित किए बिना नहीं रह सकी। इन विसंगतियों और कुरीतियों को उन्होंने लोककला द्वारा अभिव्यक्त किया है।

अन्य कलाकारों से भिखारी को इसीलिए अलग पहचाना जा सकता है क्योंकि उनकी रचनाएँ आम आदमी की रचनाएँ हैं, जो आम आदमी को आधार मान कर रची गयी हैं। बड़े-बड़े लेखक और कवि पुस्तक और पुस्तकालय से निकाल कर जन-जन तक नहीं पहुँच पाते हैं। लेकिन भिखारी इसमें बखूबी सफल रहे है। अनपढ़-गंवारों को भिखारी ने बहुत कुछ दिया ही है, पढ़े-लिखे लोग भी उनसे कम प्रभावित नहीं हैं।

भिखारी स्पष्टत: भोजपुरी के रचनाकार थे। महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने तो उन्हें भोजपुरी का शेक्सपियर कहा था। भोजपुरी उनके रोम-रोम में समायी हुई थी। ऐसा हो भी क्यों नहीं? आखिर वे थे तो भोजपुरी क्षेत्र के ही। पिता दलसिंगार ठाकुर और माता शिवकली देवी को यह कहाँ पता था कि उनका बेटा पारम्परिक उस्तरा को छोड़ कर एक दिन अपनी कला से कुछ लोगों की हजामत बनायेगा और लोकप्रियता के शिखर पर चढ़ कर देश-विदेश में उनका नाम रोशन करेगा।

सत्संग और स्वाध्याय ने भिखारी को शिक्षित किया था। बतौर जातिगत पेशा वे खड़गपुर (पश्चिम बंगाल) में लोगों की हजामत बनाने गये थे। वहाँ उन्हें रामलीला देखने को मिली। रामलीला करने वालों को यह कहाँ पता था कि उनके दर्शकों के बीच एक ऐसा व्यक्ति भी बैठा है, जिसका कलाकार मन रामलीला देखकर जग जायेगा और वह एक दिन कला की इतनी ऊँची लोकप्रियता को पा लेगा कि कला का ऐतिहासिक सन्दर्भ बन जायेगा और उसकी रामलीला पार्टी समय के गर्भ में डूबकर विस्मृत हो जायेगी।

गाँव आकर भिखारी ने एक नाटक मंडली बनायी। स्वरचित नाटकों, नृत्यों और गीतों के माध्यम से कला प्रस्तुति का इनका जो सिलसिला शुरु हुआ, आजीवन चलता रहा।

भिखारी की कला की लोकप्रियता इस बात से आँकी जा सकती है कि विदेशी हुकुमत में भी इनकी प्रस्तुतियों के दर्शकों की भीड़ को नियंत्रित करने के लिये पुलिस बल की व्यवस्था करनी पड़ती थी। उस समय यातायात का विकास नहीं हुआ था। लोग ३०-३५ किलो मीटर की दूरी पैदल तय करके भिखारी की लोक कला देखने आते थे।

कला के संरक्षण के लिये पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन प्रारंभिक नचनिया और बाद के कलाकार भिखारी ठाकुर की कला का संरक्षण स्वयं उनकी लोक कला थी। यही कारण था कि जमींदारी प्रथा की कुरीतियों के प्रदर्शन के बावजूद भिखारी की कला बाधित नहीं हो सकी। बेटी बेचने या बेमेल विवाह, विधवाओं के दुःख और भाई-भाई की लड़ाई को भिखारी ठाकुर ने निकट से देखा-परखा था।

विवाह के बाद बेटी तड़प-तड़प कर कह रही है,

"रुपया गिनाई लिहल, पगहा धराई दिहल,
चेरिया के छेरिया बनवल हो बाबूजी।

बेमेल विवाह में बिचोलिया दोनों ओर से कमीशन खाता है,

"अगुआ अभागा मुंहलगा अगुआन होके,
पूरी खा के छुरी पेसि दिहलसि बाबूजी।

विधवाओं को समाज में सुहागन की तरह स्थान प्राप्त नहीं है। बेमेल विवाह वैधव्यता का एक प्रमुख कारण है। निःसंतान विधवा का समाज में जिन्दा रहना दुभर हो जाता है,

"कवन कसूर कइलों घर से निकालल गइलीं,
छूटल जाता नइहर ससुरवा हो बबुआ।।
बबुआ समुझ मन, तोहरे ह सब धन,
काको करिहन जुठवा के असरा हो बबुआ,
आजु रहित सामी मोर, केकरो ना लागित जोर,
गतर के गहना ना छोड़ल हो बबुआ।

बढ़े हुए फैशन के कुत्सित रूप से भिखारी बहुत दुखी थे,

"सोना चानी देह में भरल; बीता भर के झुला।
छव गज के साडी परिहली, तबहूं गतर खुला।।
X X X
देखि के भइलीं भिखार, जियरा जरत व हमार।
नइखे तनिको अखतियार, दिहतीं देस रे निकार।।

यदि भिखारी को अधिकार होता तो वे नंगा पेशनपरस्तों को देश से निकाल देते। उनकी रचनाओं में देश-प्रेम तो था ही, वे साम्प्रदायिकता की भावना से भी परे थे और एकता के हिमायती थे,

"हिन्दू मुसलमान सब कोई।
मइया से सब पैदा होई।।
X X X
हउअन हिन्दू मुसलमाना।
असल वंस जाति खानदाना।।
X X X
पढ़ल बेद पुरान कुराना।
घुमल कासी कबर मसाना।।
X X X
हर छन रट राम रहिमाना।
पहुंच असल मूल ठिकाना।।

नशाखोरी का परिणाम कितना बुरा होता है — यह भिखारी को अच्छी तरह मालूम था। वे लोगों को बताते हैं,

"बेटा-बेटी भूखे मुअसु, माई बाबू भइलन सूर।
मेहर के तन पर वस्तर नइखे बबुआ नसा में चूर।।

जवानी के आलम में लोग होश खो बैठते हैं। लेकिन बुढ़ापा में शरीर थक जाने पर क्या गति होती है, उसका चित्रण देखिये,

"बनल बा जवानी तबले करत बाड़ मजवा।
थकला पर दांत से न टूटी नरम खजवा।।
लरिका बजा के भागी पपरी के बजवा।
गावत भिखारी नया गीत के तरजवा।।

पारिवारिक यथार्थ को भिखारी ने बहुत गहराई से स्वीकारा है,

"मने मन गाजत बाड़ भइलीं लरकोरवा।
बबुआ के बोली लागी पयल के कठोरवा।।
"थाक जाई देह धाम होई ठकठोला।
नांव परी दोसर पुकार के भकोला।।

विरह की ज्वाला स्त्री और पुरुष दोनों को जलाते रहती है। कालीदास के 'मेघदूत' का विरही प्रेमी अपना प्रेमिका के पास संदेश भेजने के लिये मेघ को दूत बनाया था। विरह में तड़पती गोपियों ने ही कृष्ण तक संदेश पहुंचाने के लिये पथिकों को नहीं चुना, भिखारी की विरहनियां भी अपने विरह को विदेसिया तक पहुंचाने के लिये पथिक का सहारा लेती है,

"पिया अइतन दुनिया में, राखि लिहतन दुनिया में,
अखड़ेला अधिका सावनवां बटोहिया।
X X X
पलंग बा सुनवा, का कहलीं अएगुनवा ?
से भारी त महीना ह फगुनव बाटोहिया।
X X X

चढ़ी बइसाख जब, लगन पहुंची तब,
जेठवा दवाई मोरा हेठवा बटोहिया।

X X X

मंगल करी कलोल, छर-छर बाजी ढ़ोल,
कहत भिखारी खोज पिया के बटोहिया।"

विरह की ज्वाला में दहकती पत्नी सोचती है,

"काह कइलीं चुकवा कि छोड़ल मुलुकवा,
कहल ना दिलवा के हलिया बलमुआं।
सामली सुरतिया सालत बाटे छतिया में,
एको नाहीं पंतिया भेजवल बलमुआ।
घर में अकेले बानी ईश्वर जी राख पानी,
चढ़ल जवानी माटी मिलता बलमुआं।
विरह के कूपवा में, जोगिनी के रुपवा में,
तोहरे पर अलख जगइबो बलमुआं।
तक तानी चारू ओर पिया आके कर सोर,
लवटो अभागिनी के भगिया बलमुआं।
कहत भिखारी भाई, आस नइखे एको पाई,
हमरा से होखे के दीदार हो बलमुआं।

भक्ति हर कलाकार में पायी जाती है। चाहे वह भगवान की हो या प्रेमिका की। सूर की कृष्ण भक्ति और तुलसी की राम भक्ति की तरह भिखारी की रचनाओं में भी भक्ति की भावना झलकती है। उन्होंने राम और कृष्ण दोनों की भक्ति में गीत गाये हैं—

"सांवली सुरतिया, दिल में मोहिनी मुरतिया, रामजी दुलहा।
गड़ि गहले कोसिला किसोर, रामजी दुलहा।

X X X

जा उधो अतने सुधि कहिह, तनिको सहात नइखे पीर।
कहत भिखारी बिहारी ना अइले, फुटि गइले तकदीर॥"

भिखारी के मन में एक शंका उठती है कि सांवले कृष्ण की जब इतनी प्रेमिकाएं थी तो गोरे होने पर क्या होता,

"कहे भिखारी बसे ना देवन, तनिको भर रहतन जो गोर॥"

छूआछुत की दुर्भावना तत्कालीन समाज में बुरी तरह व्याप्त थी। भिखारी ने इसे दूर करने के लिए यह स्थापित करने का प्रयास किया कि किसी भी जाति का कर्म नीचा नहीं है। धोबी समाज की गन्दगी को धोता है,

"धोबी घर-घर के नरक बिटोरिके, साफ कइ-कइ के देत।
बिना जीव का सोभे? जिमि किसान के खेत॥"

धोबी द्वारा धोबिन को समझाने के बहाने भिखारी कहते हैं कि धोने का काम धोबी ही नहीं करते हैं,

"कोइरी धोवत साग के, धोवत तमोली पान।
जजमनिका पुरोहित धोवत, करमकांड के ग्यान॥"

कला को सस्ता बनाना भिखारी को बिलकुल नापसन्द था। उनके गिरोह का कोई गायक या नचनिया पैसा लेने के लिये मंच से नीचे उतर जाये उन्हें यह हरगिज पसन्द नहीं था। उस पर वे बिगड़ जाते थे,

"खिसी भगब टूटी गरोह। एकर तनिको नइखे मोह॥
तोहरे खातिर बानि कहत। भइल बहुत दिन जवरे रहत॥"

भिखारी के गिरोह से अलग होकर अनेक कलाकारों ने अपना गिरोह बनाया। लेकिन कोई भिखारी की तरह लोकप्रिय नहीं हो सका।

कलाकार की लोकप्रियता की सीमाएँ नहीं हुआ करता। भिखारी की लोकप्रियता भी प्रदेश और देश से बाहर विदेश में पहुंच गयी। भारत में जगह-जगह घूम कर उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया। उन्होंने अनेक राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय पुरस्कार भी प्राप्त किए थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सरकारी प्रचार में सहायता करने के एवज में अंग्रेजों ने 'राय बहादुर' का खिताब देकर उन्हें सम्मानित किया था।

बिहार के भोजपुरी क्षेत्र के लोकनृत्य

● डॉ० चन्द्रेश्वर कर्ण

भौगोलिक स्थिति और उसका प्रभाव

भोजपुरी भाषा - भाषी एक बड़े क्षेत्र में निवास करते हैं। भौगोलिक भिन्नता का उनके रहन-सहन, लोक व्यवहार, क्रिया-कलाप और शील-सौजन्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। भोजपुरी भाषा-साहित्य के अनुसंधाता और मर्मी विद्वान गणेश चौबे ने इसका आकलन किया है।[1] उनके अनुसार भोजपुरी भाषी क्षेत्र को गंगा नदी दो भागों में विभाजित करती है। इसमें उत्तर से सरयू, गोमती, गंडक तथा दक्षिण से सोन नदी आकर मिलती है। इन नदियों में आनेवाली भयंकर बाढ़ से फसलें नष्ट हो जाती हैं। प्राकृतिक प्रकोपों से जूझने के कारण यहाँ के निवासी अधिक आत्म निर्भर हैं। भोजपुरी क्षेत्र के निवासियों को अधिक जनसंख्या के कारण जीविकोपार्जन के निमित्त देश के विभिन्न भागों में जाना पड़ता है। यही कारण है कि यहाँ के निवासी विदेशों तक में बस गये हैं। भोजपुरी क्षेत्र की जलवायु अधिक स्वास्थ्यप्रद होने के कारण यहाँ के निवासी स्वस्थ्य और बलिष्ठ होते हैं। भोजपुरी युवक, संसार की सबसे सुन्दर सैनिक जातियों से टक्कर ले सकते हैं।[2] भोजपुरी को जॉर्ज ग्रियर्सन ने एक कर्मठ जाति की व्यवहारिक भाषा कहा है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक विरोधी मत हैं। ग्रियर्सन ने मैथिली, मगही और भोजपुरी को बिहारी भाषा का नाम देते हुए मागधी अपभ्रंश से उद्भूत माना है। डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने इसे मैथिली-मगही से भिन्न पश्चिमी मागधन के अन्तर्गत रखा है। डॉ० श्याम सुन्दर दास और डॉ० धीरेन्द्र वर्मा जैसे भाषा शास्त्री अवधि की तरह भोजपुरी को हिन्दी की उपभाषा मानते हैं। डॉ० उदय नारायण तिवारी ग्रियर्सन के मत का समर्थन करते हुए इसकी उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से मानते हैं। इन सबसे भिन्न गणेश चौबे का विचार है कि भोजपुरी मैथिली की अपेक्षा अवधि के निकट है।

डॉ० उदय नारायण तिवारी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' में भोजपुरी का क्षेत्र निर्धारित करते हुए लिखा है, 'बिहार प्रांत के शाहाबाद, सारन, चम्पारण, राँची, जमशेदपुर स्टेट, पालामपुर के कुछ भाग तथा मुजफ्फरपुर के उत्तरी-पश्चिमी कोने में इस बोली के बोलने वाले निवास करते हैं।' नये शोध के आधार पर डॉ० तिवारी की मान्यता अंशतः खण्डित हो जाती है। किन्तु इस विवाद में न उलझकर अपने इस लेख में पुराने शाहाबाद, सारन, चम्पारण को ही बिहार का भोजपुरी बहुल क्षेत्र मान कर यहाँ के लोकनृत्यों का अध्ययन करेंगे।

भोजपुरी का लोक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, कहावतें और पहेलियाँ भोजपुरी में असंख्य मात्रा में हैं। इधर इनका संकलन, प्रकाशन और विश्लेषण की दिशा में आशातीत प्रयास हुए हैं। किन्तु यह कम आश्चर्यजनक नहीं कि इस क्षेत्र के अधिक लोकनृत्यों का पता नहीं चल सका है। यह कार्य अत्यधिक श्रम तथा व्यय साध्य है।

बिहार के भोजपुरी क्षेत्र के लोकनृत्यों में प्रमुख हैं – विदेशिया नाच, गोड़ऊ नाच, घंटी कछनाया

---

* (१) पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली; बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना। (२) जयचन्द्र विद्यालंकार; भारत भूमि और उसके निवासी, पृष्ठ — १०

लुप्तप्राय है, यदि कवि सम्मेलन होते हैं तो अधिकतर उस वाचिक परम्परा की 'पैरोडी' की तरह मालूम पड़ते हैं। भिखारी ठाकुर ने जनपद से अपनी स्वाभाविक सामाजिक प्रतिवद्धता के कारण उस वाचिक परम्परा का न केवल पुनरुद्धार किया बल्कि उसको नाटकीय आयाम प्रदान करके उसे कुछ समृद्ध भी किया। उनकी कविता जितनी गेय है और इस नाते छन्द की विभिन्न गतियों में लोकगीतों की परम्परागत चेतना के साथ मौलिक भंगिमाएँ, जो भिखारी ठाकुर के उच्चारण में ही विभिष्ट थीं, उतनी ही नाटकीय है और इस नाते व्यंग्य, भड़ैती के अतिरंजनापूर्ण मनोरंजक प्रसंगों से भरी हुई है। यदि कोई कवि छन्द लिखे, फिर नाटक लिखे और स्वयं उसमें भाग ले तो उसे न भी पढ़ सकें, न भी देख सकें तो बेखटके कहेंगे कि वह अन्यतम मालूम पड़ते हैं। उन्होंने भोजपुर जनपद में व्याप्त अनेक सामाजिक विकृतियों को लेकर नाटक लिखे हैं। ठाकुरजी ने समाज की कुरीतियों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ देखा था। हजाम जाति के होने के कारण समाज के हर क्षेत्र में, हर अवसर पर उनका प्रवेश निर्विरोध था। यही कारण है कि समाज का कुछ भी खट्टा-मीठा भिखारी ठाकुर से अछूता नहीं रह सका। समाज में भिखारी ने जो कुछ देखा, जो कुछ समझा, जो कुछ पाया उसे अपनी प्रतिभा का प्रसाद तथा रंग, रूप, गंध देकर उसे अत्यन्त सरस, मनोहर बना दिया। बूढ़े से ब्याह, बेटी की बिक्री, जायदाद के लिए भाई का कत्ल, रुपये कमाने के लिए पूरब जाना और अपनी ब्याहता को बिसार देना—इस तरह के अनेक प्रसंग हैं जिनको भिखारी ठाकुर ने अपनी नाट्य कविता का विषय बनाया है। उनकी नाट्य कविताओं में प्रमुख हैं—बिदेसिया, भाई-विरोध, विधवा-विलाप, पुत्र-वध, गंगा-स्नान, ननद-भौजाई, धिचोर-बहार, बुढ़शाल, बेटी-वियोग, कलयुग-बहार, नाई बहार, अनमेल विवाह, कलियुग प्रेम आदि। ये रचनाएँ समाज के स्वच्छ दर्पण हैं।

यह स्मरण रखना है कि भिखारी ठाकुर ने उपर्युक्त प्रसंगों में प्रस्तुतिकरण के लिए जिन मानवीय चरित्रों को चुना है, ध्यान रहे, गढ़ा नहीं है, वे आम आदमी हैं, बिल्कुल मामूली, आम आदमी के दावेदार कवियों, लेखकों ने भी उतने आम आदमियों का चित्रण नहीं किया होगा। आम और मामूली आदमी कैसे सुधरे, वह अपने बनाये हुए रिवाजों के मकड़जाले से कैसे उबरे—यही इच्छा उन्हें कविता करने के लिए अनुप्राणित करती थी। उनकी कविता में गति की भावना, देवताओं की स्तुति और अन्य प्रकार के विषय भी हैं। पर, उसके केन्द्र में अपनी सही सीमाओं और सम्भावनाओं के साथ आम आदमी प्रतिष्ठित है। फिर स्मरण रखना है, वह आदमी भोजपुर का है, उसे जनपद के किसी गाँव में खोजा जा सकता है। कहना तो यह चाहिए कि भिखारी ठाकुर की कविता में भोजपुर जनपद के आम आदमियों के चित्रों की जैसी प्रमाणिक प्रदर्शनी है वैसी शायद अन्यत्र नहीं।

भिखारी ठाकुर की सर्जनात्मक उपलब्धि उन प्रसंगों में है जहाँ वे मनुष्य की स्वाभाविक भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं। इन प्रसंगों में भी वे तो बिल्कुल अनूठे हैं जिनमें विरहिणी नायिकाओं की, नायिकाओं से अधिक अच्छा है कि औरतें कहें, विरह जन्य अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। वैसी अभिव्यक्ति में दर्द तो है ही, विशेष उलेख्य यह है कि उसमें जिन छवियों का विधान किया गया है वे घरेलू हैं और जनपद के गँवई दायरे की छोटी-छोटी सच्चाइयों को उजागर करती हैं। इस तरह अनुभूतियाँ कुछ अतिरंजनाओं के बावजूद वस्तुनिष्ठ रुप पा जाती है और वे विश्वसनीय मालूम पड़ती हैं। इस सम्बन्ध में दो-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

प्रसंग है द्रौपदी प्रकार। दुर्योधन की सभा में अपने ही खानदान की एक अबला विवश होकर सभा में खड़ी है। उस पर जुल्म और अत्याचार हद को पार कर गये हैं। एक तरफ दस हजार हाथी का बल रखने वाला दुष्ट दुःशासन है और दूसरी ओर है एक निरीह अबला। दुःशासन उस अबला का

चीर खींच रहा है। द्रौपदी उस भरी सभा में गोहार लगा रही है। वह हर प्रकार से निस्सहाय होकर पुकार कर रही है, कलप रही है—

अब पति राखऽ गोबरधन धारी,
दुसभन खींचत चीर हमारी।
छत्री वंश विध्वंस हो गइलन,
सभा में कलपत नारी।
ससुर, भसुर, पति, देवर जाऊत,
सब बइठल मन मारी।
पैर में पीर, सरीर दुखित बा,
मासिक करम लाचारी।
दु:सासन दुरदसा बनावत,
दुरजोधन ललकारी।
सब अपना सपना हो गइलन,
नाहक जाल पसारी।
धरती हमें पताल खिलादऽ,
आपन करेजा फारी।
कहत भिखारी हमारी माफ कर,
सब अवगुन त्रिपुरारी।
दया के सागर परम उजागर,
अधम से लेहु उभारी॥

अपनी कानी अंगुली पर गोवर्द्धन पहाड़ को धारण करने वाले कृष्ण से द्रौपदी की प्रार्थना में द्रौपदी की दयनीय दशा का, उसकी करुणा की अनुभूति की जो मार्मिक अभिव्यक्ति भिखारी ठाकुर ने अपनी गँवई भाषा में की है वह शायद अन्यत्र दुर्लभ है।

मधुर प्रेम के दर्भ की कहानी भिखारी के जीवन में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक बनी रही। 'विदेशिया' नाटक की नायिका एक हिन्दू गृहिणी है जो अपने पति के सिवा दूसरे किसी को अपना प्रेम-देवता नहीं मानती। इसका निर्मोही और निष्ठुर प्रियतम अपनी निष्ठुरता में तनिक भी रियायत नहीं करता। वह उसकी पत्नी है और उसने कभी जिस पति का कोई सुख नहीं जाना, फिर भी वह उसके प्रति कृतज्ञ है। उसकी शादी हुई, गवना हुआ। गवना कराकर प्रियतम उससे जुदा हो गया। विरह विदग्धा पल-पल में, क्षण-क्षण में, आठो पहर उसकी प्रतीक्षा कर रही है। उसकी प्रतीक्षा दर्दनाक स्थिति और प्रियतम की दर्शन की उसकी लालसा धन्य है—

बीतत बाटे आठ पहरिया हो, डहरिया जोहत ना।
X X X
परोसीकर धरिया दाल भात तरकरिया हो;
लहरिया उठे ना।
X X X
कोई हमरा जरिया में भिरवले बाटे अरिया हो,
चकरिया दरिके ना।
दुख में होत बा जतसरिया हो
चकरिया दरिके ना।
X X X
कहत भिखारी मनवा करेला हर धरिया हो,
उमरिया भरिया ना।
रहितें त देखतीं भर नजरिया हो,
उमरिया भरिया ना।

इसी तरह बेटी-बेचवा, विधवा-विलाप, पुत्रवध-नाटक आदि प्राय: सभी कृतियों में ऐसे अनेक मार्मिक धरेलू प्रसंग हैं जो भोजपुरी जनपद के ग्रामीण दायरे की विकृतियों एवं सच्चाइयों को उजागर करती हैं।

इस चर्चा को खत्म करने के पहले दो एक तथ्यों की ओर ध्यान दिया जाना जरूरी है। ऐसा लगता है कि भोजपुर के बौद्धिक अभिजात्य संस्कृति के, श्रेज्य लेखन के प्रभा-मण्डल से इतने अभिभूत हैं कि वे उधर नहीं देख पाते जिधर घर के दिये का टिमटिमाता हुआ उजाला है, कुछ धुँधला होने के बावजूद अनगढ़ प्यार से भरा हुआ। शायद यही कारण है कि भिखारी ठाकुर का उनकी सर्जनात्मक उपलब्धियों का अध्ययन और आकलन करने में वे उतनी रुचि नहीं ले रहे हैं। भिखारी ठाकुर पर अभी तक दो-एक अध्ययन ही हो सके हैं। अब यह जरूरी है कि भिखारी ठाकुर के सर्जनात्मक व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर सूक्ष्म और गहन अध्ययन हो और इस तरह आधुनिक काल में भोजपुर जनपद की विभिष्ट सांस्कृतिक उपलब्धि को सही पहचान के साथ स्मरण किया जा सके। ★

अथ सूत्रधार उवाच

चिंता-संस्कृति की अभिजात्य मुद्रा

© उर्मिल कुमार थपलियाल

वर्त्तमान रंग चिंतन वस्तुतः शहरी सोच तक सीमित हो गया है। यह शहर की स्वभावगत चिंता है। जटिल मानसिकताओं के बीच शहरी आदमी के जीवन की जटिलता उसके सोच में शामिल हो गई है। यह सोच उसे एक नैसर्गिक दंभ प्रदान करता है कि वह पूरे समाज या संस्कृति के प्रति चिंतित है। वह बुद्धिवादी है। परम्परा का आधुनिक इस्तेमाल करने में सक्षम है। अतः उसका निर्णय अन्तिम है। निर्णय क्या उसका चिंतन भी प्रामाणिक, प्रसांगिक और सर्वोच्च स्तर का है। संस्कृति की चिंता करके आधुनिक समाज ने स्वयं को प्रतिष्ठा देने का जो पराक्रम किया है, उससे, उसमें आत्मरति और अपनी छवि पर मोहित होने का एक अभिजात्य भाव जगा है।

लोक संस्कृति चिंता की संस्कृति नहीं है। उसकी उन्मुक्तता उसे बंदिशों में नहीं बाँधती। इसीलिए उसे प्रतिष्ठा का मोह नहीं रहा। यही कारण है कि अभिजात्य साहित्य की 'कामायनी' की अर्द्धशती पूरी होने पर उसकी पुनर्प्रतिष्ठा के प्रयास जारी है और 'आल्हा-उदल' के रचयिता जगनीक प्रतिष्ठा-प्रयत्नों से इतना अलग-थलग है कि वह शहरी (या शास्त्रीय) मानकों में फिट नहीं होता। मगर जगनीक है और रहेगा। लोकसत्ता की यही अमरता है कि वह इतिहास के पन्नों से अलग रह कर भी इतिहास में लिखित तथ्यों से कहीं अधिक जीवित रहती है। हमारे लोकतंत्र ने, लोकसत्ता का चुनावी रुप तो लिया कि लोकतंत्र माने, जनता की, जनता द्वारा, जनता के लिए... वगैरा-वगैरा। मगर उसके बाद 'सत्ता' से लोक हटा कर उसे निर्जीव तंत्र दे दिया। वो तंत्र जिसमें मानवीय संवेदनाओं का पतन होने लगा।

लोकसत्ता ने कभी राज्य सत्ता की परवाह नहीं की। उसके निर्णय इतिहास की पोथियों में नहीं, समय की छाती पर उकेरे गये। काल के भाल पर उसने अपने निर्णय लिखे। राम तो राजा ही नहीं, भगवान भी थे। ईश्वर! राजा राम ने, रावण को मुक्ति प्रदान करने के बाद, विभिषण को राज्य सौंपने का निर्णय दिया। वह पूरा भी हुआ। विभीषण राजा भी बन गया, पर लोकसत्ता ने न राजा राम का और न भगवान राम का, दोनों रूपों में इस निर्णय को अस्वीकार कर दिया। लोकसत्ता का आलिखित, निर्णय था—विभीषण के मायने है—घर के भेदी लंका ढ़ाये। विभीषण को भितरघात का पर्याय बना कर लोकसत्ता ने न रावण का पक्ष लिया और न राम का पक्ष लिया। उसने एक थोपे गये निर्णय को अपनी खुली अस्वीकृति दी। यही अस्वीकृति लोकोक्ति बन गई। यह लोक शक्ति का लोहा था जो बाजा बजेगा।

एक तरफ राम और कृष्ण को पूजने वाली लोकसत्ता, गाँव के पत्थर को भी पूजती है। यह उसकी श्रद्धा आस्था का असीमित वितान है। राजाओं के पुत्र होते हुये भी सभी प्रमुख अवतारों पर पुष्प और नैवेद्य चढ़ाने वाली लोकसत्ता, गाय और नाग से लेकर गाँव के कुएँ तक को प्रणाम करती है। हर वस्तु उसके लिए पूजनीय है जो उसके जीवन और आत्मा से जुड़ी है। चाहे वो पीपल का पेड़ हो या मोदी का पथरौटा।

नृत्य, नृत्त और नाट्य के शास्त्रीय भेदों की अपनी सुविधा है। उनका अपना मान, स्थान, स्तर और महत्व है। किन्तु लोक क्षेत्रों में यह एक ही डाल पर फूलते हैं। एक बड़े वृक्ष के नीचे से ही भरत मुनि ने इन वर्गीकरणों को फल, फूल और पत्ती की तरह उठाया और बीना होगा।

शहरी सेमिनारों, सम्मेलनों, गोष्ठियों, उत्सवों, महोत्सवों का एक मिला - जुला रुप है, जो दूर से देखिये तो शहर का 'फोक' लगता है। शहर का भी अपना कोई संस्कार होगा, वह यही है—आंदोलन, उद्घाटन, भाषण आदि आदि। ये शहरी संस्कृति के उपकरण हैं। शहर की अपनी मौलिकता यही है। ऐसे उपकरणों के माध्यम से की गई संस्कृति की चिंता एक नकली चिंता है। इस नकली चिंता के कारण ही शहर की उपादेयता और अस्तित्व है। मैंने पहले भी कहा कि लोकतंत्र में अपना निर्णय अगर दिया है तो गाँवों ने। शहरों में सत्ता रहती है। वह परिवर्त्तन नहीं कर सकती। परिवर्त्तन का गुण, तत्व और संस्कार भी लोकसत्ता में ही है। यह परिवर्त्तन वह चिंतित होकर नहीं करती। पहाड़ों की नदी, चिंतित होकर कभी रास्ता नहीं बदलती। चिंतित वे होते हैं, जो नदी को नहर की संस्कृति बना कर उसे एक नकली आवरण देते हैं।

हमारे आधुनिक रंगकर्म में भी 'चिंता' इन्हीं सामानान्तरों पर है। कला और साहित्य में ऐसा संक्रमण काल काफी समय बाद आया है। अतः निर्णय जल्दी नहीं निकल सकते। जिस अराजकता और उच्छंखलता की आवश्यकता, बाद में स्थापित होने वाली 'व्यवस्था' के लिए आवश्यक है—वही आज चरम सीमा पर है। एक धुंध है जो साफ होने के लिए ही छाई है। यह समय मंथन का है। इस लोकमंथन से निश्चित है कि जो भी मक्खन निकलेगा, वह मदर डेयरी या आमूल के रेपर वन्धे मक्खन से अधिक पौष्टिक तत्व का होगा। हमें दिखने में वह निरा लौंदा लगेगा। एक क्रूड चीज।

K. M. UDYOG

Manufacturer of :-

SPARE PARTS FOR STEEL PLANT, COKE-OVEN,
ROLLING MILL & MINING EQUIPMENTS.

New Ancillary Industrial Area
TUPUDANA, RANCHI

भिखारी ठाकुर : एक मिथ, एक सच.....

(शेष पृष्ठ ६ से आगे का)

तत्सामयिक महत्त्व है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि वे एक ऐसे समय और समाज में काम कर रहे थे जब भोजपुरी में साहित्य लेखन या रंगकर्म की कोई पुष्ट परम्परा नहीं थी। इस अर्थ में वे आधुनिक भोजपुरी साहित्य के आदि पुरुष थे।

भिखारी ठाकुर का सर्वाधिक दुर्बल पक्ष यह है कि उनके रचनात्मक विकास का कोई ग्राफ नहीं बनता। साठ वर्षों के दीर्घकाल तक रंग कर्म में लगे रहने बावजूद उनमें किसी विचार-यात्रा को ढूँढ पाना दुष्कर ही है। अपने समय और समाज की बदलती जीवन-स्थितियों और मूल्यों पर उनकी पकड़ बेहद कमजोर थी। वे न तो गुलाम भारत की वेदना से द्रवीभूत हुए, न स्वाधीन भारत की कठिनाइयों से प्रभावित। दरअस्ल, उनकी एक अपनी दुनिया थी— अयथार्थ भावलोक जैसी। अपने विशाल दर्शक और श्रोता वर्ग को वे निपट मनोरंजन ही परोसते आये— मेनू तक बदलना उन्हें जरूरी नहीं हुआ। फलतः उनकी कविताएँ और नाट्यकृतियाँ एक रूमानी दुनिया की रचना करती हैं। कथ्य या शिल्पनिधि में व्याप्त यह जड़ता उन्हें एक ही परिधि की अनगिनत परिक्रमा तो करने देती है, लेकिन आगे की यात्रा को अवरुद्ध भी करती है।

अपनी यही सीमाओं के कारण भिखारी ठाकुर अपार लोक प्रियता के बावजूद इतिहास-पुरुष नहीं बन सके। लोक रंजन से ऊपर उठ कर व्यापक समाज चेतना से जुड़ना उनके लिए हमेशा दुष्कर बना रहा। गौर तलब बात है कि उनके जीवन काल में ही बटोहिया के कवि रघुवीर नारायण और लोहा सिंह के नाटककार रामेश्वर सिंह कश्यप ने भी भोजपुरी भाषियों में सम्मानजनक पहचान बनायी। जाहिर है कि बटोहिया और लोहा सिंह के सर्जक सिर्फ लोकरंजन के धरातल पर काम नहीं कर रहे थे, बल्कि देश काल के अर्थपूर्ण सांस्कृतिक बोध से भी जुड़े हुए थे। इसी कारण, बटोहिया इतिहास गौरव और राष्ट्रीय चेतना का बेजोड़ वाहक बन सका तथा खदेरन परिवार में असंख्य जनगण को व्यापक समाज चेतना का दर्पण भी मिला। साफगोई की बात यह है कि भिखारी ठाकुर कवि और नाटककार के रूप में दूर तक प्रभा- नहीं करते, किन्तु रंगकर्मी लोक कलाकार भिखारी ठाकुर का कोई जोड़ नहीं। अभिनय, गायन, और नर्तन के लोकरंग की एक निराली छटा भिखारी में मिली है। वे एक सम्पूर्ण रंगकर्मी थे। यही उनकी अनमोल पूँजी थी और इसी बूते वे अविस्मरणीय बने रहेंगे। वैसे, भिखारी ठाकुर की नाट्य-प्रस्तुतियाँ से मुक्ताकाशी रंगमंच की सफलता की धारणा को एक मजबूत आधार मिलता है। हिन्दी रंगमंच या हिन्दी क्षेत्र की अन्याय जनपदीय भाषाओं के रंगमंच को भिखारी की मंचीय शिल्पविधि से बहुत कुछ समझने और सीखने की प्रयोगशाला सुलभ हो सकती है। इस अर्थ में, भिखारी ठाकुर की प्रासंगिकता बनी और बची हुई है। इसी जमीन पर भिखारी ठाकुर के स्मारक की आधार शिला गढ़ी जा सकती है।

*